વીતરાગ સત્ સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ
ભાવનગર

सम्यग्ज्ञानदीपिका

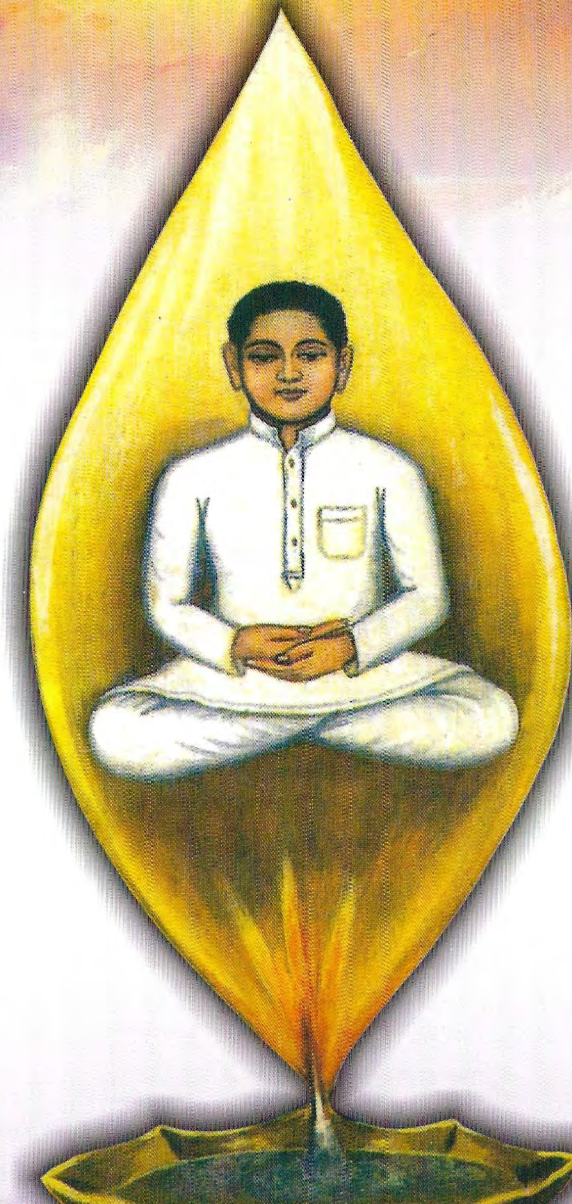

ॐ

परमात्मने नमः

श्री क्षुल्लक धर्मदासजी विरचित

सम्यग्ज्ञान-दीपिका

आधुनिक हिन्दीमें परिवर्तनकार :-
सि. आ. पं. श्री फूलचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री
वाराणसी (उ.प्र.)

प्रकाशक
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

⌘ **प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :**
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट / श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
५८०, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) ४२३२०७ / २१५१००५

⌘ **गुरु गौरव**
श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,
पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़

⌘ **श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१, ०९८२०३६५६८३**
श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : ०९७४८७१२३६०

प्रथमावृत्ति : प्रत : २१००,
द्वितीयावृत्ति : प्रत : ५००
तृतीयावृत्ति : प्रत : ५००, ३१-१२-०७
चतुर्थ आवृत्ति : प्रत : ५००, १३-१२-२०१०
पाँचवी आवृत्ति :- प्रत : ५००, दि. ११-११-२०१५ (वीर निर्वाण कल्याणकदिन)

पृष्ठ संख्या : २८ + १६४ = १९२
लागत मूल्य : ६२/-
विक्री मूल्य : २०/-

टाईप सेटिंग :
पूजा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शान्तिनाथ बंगलोझ
शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास
भावनगर-३६४००१
फोन : ९७२५२५११३१

मुद्रक :
भगवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५४७७७४५

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

प्रकाशकीय निवेदन

आज पूज्य अध्यात्ममूर्ति सत्पुरुष श्री 'कानजी स्वामी'का ८१ वाँ जन्मोत्सव भावनगरके प्रांगणमें मनानेका परम सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। इस उत्सवके एक अंगरूपमें आज पूज्य श्री 'कानजी स्वामी' ग्रंथमालाका मंगल प्रारंभ करते हुए और उसके प्रथम पुष्पके रूपमें इस 'सम्यग्ज्ञानदीपिका' ग्रंथका (आधुनिक हिन्दीमें परिवर्तित रूपसे) प्रकाशन करते हुए हमें अति आनंद होता है। पूज्य परमोपकारी अध्यात्ममूर्ति सत्पुरुष श्री 'कानजी स्वामी'के पुनीत प्रताप और व्यापक प्रभावनायोगसे अनेक संस्थाओं द्वारा अनेक आध्यात्मिक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, और समस्त भारतवर्षमें अध्यात्मज्ञानका विपुल प्रचार हुआ है। यह छोटा-सा प्रकाशन भी उन्हींके प्रतापका फल है।

यह 'सम्यग्ज्ञानदीपिका' ग्रंथ क्षुल्लक ब्र. 'धर्मदासजी'ने पुरानी हिन्दी भाषामें रचकर विक्रम सं. १९४६ की माघ शुक्ला पूर्णिमाके दिन छपाकर प्रकाशित किया था। इसकी दूसरी आवृत्ति वि. सं. १९९०में प्रकाशित हुई थी। गुजरातीमें अनूवादित दो आवृत्तियाँ सोनगढ़से भी प्रकाशित हुई हैं। यदि इस ग्रंथको आधुनिक हिन्दीमें परिवर्तित कराके प्रकाशित किया जाय तो हिन्दी-भाषी लोग विशेष लाभ ले सकेंगे इस हेतुसे आज यह ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है।

इस ग्रंथमें आत्माके शुद्धस्वभावका वर्णन किया गया है। सम्यग्ज्ञान प्रगट करनेके लिये यह दीपिका समान है इसलिये इस ग्रंथका नाम **'सम्यग्ज्ञान-दीपिका'** रखा गया है। सम्यग्ज्ञानको भेदविज्ञान भी कहा जाता है, वह भेदविज्ञान होनेपर आत्मा स्वयं स्व-प्रकाशक होता है

और स्व-प्रकाशक होनेपर पर-प्रकाशक भी सहज ही होता है। स्व-प्रकाशकपने बिना पर-प्रकाशकपना मिथ्या होता है।

इस ग्रंथमें जो चित्र दिये हैं, उन्हें समझनेके लिये ग्रन्थमें किस पृष्ठ पर उसका स्वरूप है वह पृष्ठ नम्बर देकर बतलाया गया है। उसे पढ़कर चित्रोंका भाव समझें।

इस ग्रन्थमें, अनेक स्थानों पर तर्क और दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि आत्माका स्वरूप शुद्ध चैतन्यज्योति स्वानुभवगम्य है, तथा सद्गुरुका यथार्थ आश्रय लेनेके लिये अनेक स्थानों पर सूचित किया गया है।

अब इस ग्रन्थकी विशिष्टता पर ध्यान आकर्षित करते हैं :-

(१) कर्म-वर्णन

आठ कर्मोंका वर्णन उनसे भेदज्ञान करनेके लिये किया है; जीव अपनेको भूले तो उस प्रकारकी भूलमें कौनसा कर्म निमित्त होता है वह बतलाया है।

जीव और कर्म भिन्न भिन्न द्रव्य होनेसे कोई एक-दूसरेका कुछ कर नहीं सकते। जीव कर्मका ज्ञाता है परन्तु कर्ता-भोक्ता नहीं है; जीव विकार करे तब कर्मोदय पर आरोप करके ऐसा कहा जाता है कि कर्मके उदयसे विकार हुआ, परन्तु वह कथन उपचार मात्र है - ऐसा समझना, यथार्थ तत्त्व यह है कि जीव स्वयं स्वतंत्ररूपसे कर्मके वश होकर दुःखी होता है।

(२) शास्त्रोंके अर्थ सम्बन्धी

शास्त्रोंमें उपचारकथन किसप्रकारके होते हैं उसके तीन सुन्दर दृष्टान्त इस ग्रन्थमें दिये गये हैं, वे निम्नानुसार हैं :-

जैसे हाथीके दांत बाहर देखनेके जुदे हैं तथा भीतर चबाने-खानेके जुदे हैं; वैसे ही जैन ऋषि, मुनि और आचार्यके रचे हुए सिद्धान्तशास्त्र, सूत्र और पुराणादिक हैं वे तो हाथीके दांतोके समान समझना तथा भीतरका यथार्थ आशय जिसका जो वही जानता है।

यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि शास्त्रोंमें अनेक उपचारकथन हैं, उनका आशय पकड़कर परमार्थ अर्थ समझना। यदि शब्दोंको पकड़ा जायेगा तो शास्त्रका आशय समझमें नहीं आयेगा।

एक साहूकारने अपने पुत्रको परदेश भेजा। कितने ही दिनके बाद बेटेकी बहू बोली 'मैं तो विधवा हो गई'। तब उस सेठने अपने पुत्रके नाम पत्र भेजा, उसमें ऐसा लिखा कि 'बेटा ! तेरी बहू तो विधवा हो गई।' तब वह सेठका पुत्र उस पत्रको पढ़कर शोक करने लगा। किसीने पूछा - 'तुम शोक क्यों करते हो ?' उसने कहा - 'हमारी स्त्री विधवा हो गई।' यह सुनकर वह बोला - 'तुम तो प्रत्यक्ष जीवित मौजूद हो, फिर तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे होगई ?' तब वह सेठका पुत्र बोला - 'तुमने कहा वह तो सच है, परन्तु मेरे दादाजीका लिखा हुआ पत्र आया है उसे झूठा कैसे मानूं ?'

यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि अज्ञानी शास्त्रका आशय जानते नहीं और आशय समझे बिना ही कहते हैं कि 'शास्त्रमें कर्मके उदयसे - निमित्तसे लाभ-हानि होते हैं ऐसा लिखा है, वह क्या झूठ है ?' ज्ञानी कहते हैं कि 'भाई ! शास्त्रकारका आशय तो यह है कि - आत्मा स्वयं मौजूद है और उसकी परिणति कर्मके उदयसे या निमित्तसे होती है ऐसा मानना वह तो तेरी मौजूदगीमें तेरी स्त्री विधवा हो और 'मेरी स्त्री विधवा हो गई' ऐसा कहकर जोर जोरसे रोने जैसा है। शास्त्रके वे कथन तो उपचारमात्र, कर्मकी अवस्थाका तथा निमित्तका ज्ञान करानेके लिये हैं।'

शास्त्रमें लिखते हैं कि मुनि बाईस परीषह सहन करता है, तेरह प्रकारका चारित्र पालता है, दशलक्षण धर्म पालता है, बारह भावनाओंका

चिन्तवन करता है और बारह प्रकारके तप तपता है इत्यादि मुनि करता है। अब यहाँ ऐसा विचार आता है कि मुनि तो एक और परीषह बाईस, चारित्र तेरह प्रकारका, दसलक्षण धर्म व एक धर्मके दसलक्षण, बारह तप और बारह भावना इत्यादिक बहुत ? मुनि कुछ और है तथा बाईस परीषह कुछ और हैं, बाईस परीषहका तथा मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य-प्रकाशके समान मेल नहीं है। इसी प्रकार तेरह प्रकारके चारित्रका और मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य-प्रकाशके समान मेल नहीं है। इसी प्रकार दसलक्षण धर्म, बारह तप तथा बारह भावनाका और मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य-प्रकाशके समान मेल नहीं है।

यह कथन ऐसा सूचित करता है कि मुनिको तो एक वीतरागभाव और उसकी वृद्धि होती है। बाईस परीषह, तेरह प्रकारके चारित्र, दसलक्षण धर्म, बारह प्रकारके तप, बारह भावनाएँ, वे तो विकल्प और निमित्तके भेद है, वीतरागभावमें भेद नहीं पड़ते। जितनी शुद्धता उतनी वीतरागता और वह धर्म है ऐसा कहनेका ज्ञानियोंका आशय है। भूमिकानुसार विकल्प और निमित्तके भेद बतलानेके लिये सर्व भेद हैं, अंतर्परिणतिके वे भेद नहीं हैं।

(३) ग्रन्थकारकी सूचनाएँ

१-किसीको जन्म-मरणादि संसारसे-दुःखसे छूटनेकी इच्छा हो तथा सदाकाल उस जागती ज्योतिसे मिल जानेकी इच्छा हो तो वह प्रथम सद्गुरुआज्ञाके अनुसार उस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामक पुस्तकको आदिसे अन्त तक पढ़ो-मनन करो।

समझो समझो समझमें समझो निश्चय सार,
धर्मदास क्षुल्लक कहे तब पावो भवपार।

(४) उपादान - निमित्तके सम्बन्धमें

इस ग्रन्थमें जो चित्र दिये गये हैं उनमें सुन्दर मरी हुई स्त्री हैं और उस स्त्रीका मृत शरीर देखकर भिन्न-भिन्न देखनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकारके भाव उत्पन्न करते हैं ऐसा दर्शाया है। वह चित्र सिद्ध करता है कि निमित्त जीवको कुछ नहीं करता, परन्तु जीव (उपादान) स्वयं उस ओर लक्ष करके अपनेको रुचे वैसे भाव करता है; क्योंकि निमित्त तो सब देखनेवालोंको समान ही था। इसलिये उस चित्र परसे उपादान और निमित्त दोनोंकी स्वतंत्रता जैसी है वैसी समझना।

(५) मुमुक्षुओंको सूचना

पाठकोंको इस पुस्तकका सूक्ष्म दृष्टिसे अभ्यास करना चाहिये, क्योंकि सत्शास्त्रका धर्मबुद्धिसे अभ्यास वह सम्यग्दर्शनका कारण है; तदुपरान्त शास्त्राभ्यासमें निम्नोक्त बातोंका विशेष ध्यान रखें -

(१) सम्यग्दर्शनसे ही धर्मका प्रारम्भ होता है।

(२) सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना किसी भी जीवको सच्चे व्रत, सामायिक, प्रतिक्रमण, तप, प्रत्याख्यान आदि नहीं होते। क्योंकि वे क्रियाएँ प्रथम पंचम गुणस्थानमें शुभभावरूपसे होती हैं।

(३) शुभभाव ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको होते हैं परन्तु अज्ञानी उनसे धर्म होगा ऐसा मानता है और ज्ञानी (वे हेयबुद्धिसे होनेके कारण) उनसे कभी धर्म नहीं होता ऐसा मानता है।

(४) इस कथनसे ऐसा नहीं समझना कि शुभभाव करनेको मना किया जा रहा है, परन्तु उन्हें धर्म नहीं मानना अथवा उनसे क्रमशः धर्म होगा ऐसा नहीं मानना, क्योंकि अनन्त वीतरागोंने उन्हें बन्धका कारण कहा है।

(५) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ कर नहीं सकता, परिणमित

नहीं कर सकता, प्रेरणा नहीं कर सकता, प्रभाव, सहायता या उपकार नहीं कर सकता, लाभ-हानि नहीं कर सकता, मार-जिला नहीं सकता, सुख-दुःख नहीं दे सकता;-ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्यायकी सम्पूर्ण स्वतंत्रता अनन्त ज्ञानियोंने पुकार-पुकार कर कही है।

(६) जिनमतमें तो ऐसी परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व होता है पश्चात् व्रत होते हैं; अब सम्यक्त्व तो स्व-परका श्रद्धान होनेपर होता है, तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास करनेसे होता है; इसलिये प्रथम द्रव्यानुयोग अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि होना।

(७) पहले गुणस्थानमें जिज्ञासु जीवोंको शास्त्रोंका अध्ययन, पठन - मनन, ज्ञानी पुरुषोंका धर्मोपदेश श्रवण, निरन्तर उनके समागममें रहना, देवदर्शन, पूजा, भक्ति, दानादि शुभभाव होते हैं; परन्तु पहले गुणस्थानमें सच्चे व्रत, तप आदि नहीं होते।

(८) ऊपरी दृष्टिसे देखनेवालेको निम्नोक्त दो शंकाएँ होना सम्भव है :-

(अ) ऐसे कथन सुनने और पढ़नेसे लोगोंको बड़ा नुकसान होना सम्भव है।

(ब) वर्तमानमें लोग जो कुछ व्रत, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमणादि क्रियाएँ करते हैं वे छोड़ देंगे।

इसका स्पष्टीकरण निम्नानुसार है :-

(अ) सत्यसे किसी भी जीवको नुकसान होगा ऐसा कहना वह भूल है अर्थात् असत् कथनसे लोगोंको लाभ होगा ऐसा मानने बराबर होता है। सत् सुननेसे या पढ़नेसे जीवोंको कभी नुकसान होता ही नहीं। (ब) व्रत - प्रत्याख्यान करनेवाले ज्ञानी होंगे तो छद्मस्थदशामें वे व्रत छोड़कर अशुभमें जायेंगे ऐसा मानना न्यायविरुद्ध है। परन्तु ऐसा हो सकता है कि वे क्रमशः शुभ भावको टालकर शुद्धिको बढ़ायें; परन्तु वह तो लाभका कारण है, नुकसानका कारण नहीं है। इसलिये सत्यकथनसे किसीको नुकसान नहीं होता।

जिस स्वानुभवगम्य, सदाकाल एकरूप, जागती ज्योति - ज्ञानानन्दस्वभावी निज आत्मद्रव्य सामान्य-की परम महिमा इस ग्रन्थकारने गायी है, उस जागती ज्योतिका अनुभव कर जिन्होंने अपने अमृतझरते प्रवचनों द्वारा तथा उनके प्रतापसे प्रकाशित अनेक ग्रन्थों द्वारा समस्त भारतवर्षमें शुद्धात्मद्रव्यकी महिमाका एवं स्वानुभूतिकी रुचिका युग प्रवर्तित किया है, उन अद्भुत-उपकारी प्रत्यक्ष सत्पुरुष श्री कानजी स्वामीका परम उपकार वाणी द्वारा व्यक्त करनेमें हम असमर्थ हैं।

पण्डितश्री फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीने इस ग्रन्थका आधुनिक हिन्दीमें सुन्दर परिवर्तन करनेका जो श्रम किया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

अनुवादकी जाँच करनेमें माननीय श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी, श्री पण्डित हिंमतलाल जेठालाल शाह, श्री खीमचन्द जेठालाल सेठने तथा डॉ. श्री चंदुलाल ताराचंद कामदारने अपना अमूल्य समय देकर सहयोग दिया है उसके लिये हम उनका भी आभार मानते हैं।

लि.

श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल,

की ओरसे

हिंमतलाल हरगोविंददास शाह, भावनगर

प्रस्तुत ग्रंथ की प्रथम चतुर्थ आवृत्ति अनुपलब्ध होने से तथा पाठकों की निरंतर माँग बनी रहने से यह पाँचवी आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। ग्रंथ के सुंदर मुद्रणकार्य के लिये पूजा इम्प्रेशन्स,

भावनगर तथा मे. भगवती ऑफसेट, अहमदाबाद के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इस ग्रंथ का मूल्य घटाने हेतु श्री महेन्द्रभाई रतिलाल शाह, बोरीवली-मुंबई की ओर से दानराशी प्राप्त हुई है, इसलिए ट्रस्ट उनका आभारी है। मुमुक्षुजन इससे लाभान्वित हो, यही शुभ कामना है।

भावनगर
दि-२८-९-२०१५

ट्रस्टीगण
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

ग्रन्थकर्त्ताकी सूचना

सम्यग्ज्ञानदीपिका दृष्टान्त :- जैसे दीपककी ज्योतिके प्रकाशमें कोई इच्छानुसार पाप, अपराध, काम, कुशील अथवा दान, पूजा, व्रत, शीलादिक करे वह-अर्थात् जितने संसार तथा संसारसे ही तन्मय इस संसारके शुभाशुभ कार्य क्रियाकर्म तथा उन सबका फल है वह-इस दीपकज्योतिको भी नहीं लगता तथा दीपकज्योतिसे दीपज्योतिका प्रकाश तन्मयी है उसे भी जन्म - मरणादिक, पुण्य-पाप, संसार नहीं लगता, उसी प्रकार स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सदाकाल जागती ज्योति है वह न मरती है, न जनमती है, न छोटी है, न बड़ी है, न नास्ति है, न अस्ति है, न यहाँ है, न वहाँ है, तथा न उसे पाप लगता है, न उसे पुण्य लगता है, न वह ज्योति बोलती है और न वह (ज्योति) हिलती चलती है। संसार उस ज्योतिके भीतर, बाहर या मध्यमें नहीं है तथा उसीप्रकार वह ज्योति है सो भी संसारके भीतर, बाहर या मध्यमें नहीं है। जैसे नमककी डली पानीमें मिल जाती है वैसे ही किसीको जन्म-मरणादिक संसारदुःखसे छूटनेकी इच्छा हो वा सदाकाल उस जागती ज्योतिसे मिल जानेकी इच्छा हो वह प्रथम सद्गुरुआज्ञानुसार इस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामक पुस्तकको आदिसे अन्ततक पढ़ो-मनन करो।

ग्रन्थकर्त्ताकी प्रस्तावना

इस पुस्तकमें प्रथम यह प्रस्तावना, तत्पश्चात् इस पुस्तककी भूमिका, पश्चात् इस पुस्तकका प्रारम्भ, चित्रद्वार, निर्विकल्प शुक्लध्यानका सूचक चित्र हस्तांगुलिचक्र, चित्र सहित ज्ञानावरणीयकर्म, दर्शनावरणीयकर्म, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र तथा अन्तरायकर्मः तत्पश्चात् दृष्टान्त - समाधान है, उसमें एक प्रश्नोआत्मा कैसा है और किसप्रकार पाया जाये, उसके ऊपर दृष्टान्त संग्रह, तत्पश्चात् दृष्टान्त चित्र, आकिंचन भावना तथा भेदज्ञान (वर्णित) करके यह ग्रन्थ समाप्त किया है।

इस ग्रन्थमें केवल स्वस्वभाव-सम्यग्ज्ञानानुभव-सूचक शब्दवर्णन है। कोई दृष्टान्तमें तर्क करेगा कि-'सूर्यमें प्रकाश कहाँसे आया?' उसे स्वसम्यग्ज्ञानानुभव कि जो इस ग्रन्थका सार है उसका लाभ नहीं होगा। जिसप्रकार जैन, विष्णु और शिवादिक मतवाले परस्पर लड़ते हैं-बैर-विरोध करते हैं-मतपक्षमें मग्न हुए हैं और मोह-ममता-माया-मानको तो छोड़ते नहीं हैं, उसीप्रकार इस पुस्तकमें बैर-विरोधके वचन नहीं हैं। जिस अवस्थामें स्वसम्यग्ज्ञान सोता है उस अवस्थामें तन-मन- धन-वचनादि से तन्मयी यह जगत् संसार जागता है तथा जिस अवस्थामें यह जगत्-संसार सोता है उस अवस्थामें स्वसम्यग्ज्ञान जागता है,- यह विरोध तो अनादि अचल है और वह तो हमसे, तुमसे, इससे या उससे मिटनेका नहीं है, मिटेगा नहीं और मिटा नहीं था। यह पुस्तक जैन, विष्णु आदि सभीको पढ़ने योग्य है; किसी विष्णुको यह पुस्तक पढ़नेसे भ्रान्ति हो कि 'यह पुस्तक जैनोक्त

है।' उससे कहता हूँ कि-इस पुस्तककी भूमिकाके प्रथम प्रारम्भमें ही जो मंत्र नमस्कार है उसे पढ़कर भ्रान्तिसे भिन्न होना; स्वभावसूचक जैन, विष्णु आदि आचार्योंके रचे हुए संस्कृत काव्यबद्ध-गाथाबद्ध ग्रन्थ अनेक हैं परन्तु यह भी एक छोटी-सी अपूर्व वस्तु है। जिसप्रकार गुड़ खानेसे मिष्टताका अनुभव होता है उसीप्रकार इस पुस्तकको आदिसे अन्त तक पूरा पढ़नेसे पूर्णानुभव होगा। बिना देखे-बिना समझे वस्तुको कुछके बदले कुछ समझता है वह मूर्ख है। जिसे परमात्माका नाम प्रिय है उसे यह ग्रन्थ अवश्य प्रिय होगा।

इस ग्रन्थका सार ऐसा लेना कि-सम्यग्ज्ञानमयी गुणीका, (वह गुणी) गुणसे सर्वथाप्रकार भिन्न है' (ऐसा अभिप्राय) वही अवगुण है; उसको छोड़कर स्वभाव-ज्ञानगुण ग्रहण करना, पश्चात् गुणको भी छोड़कर गुणीको ग्रहण करना, तत्पश्चात् गुण-गुणीकी भेदकल्पनासे सर्वथाप्रकार भिन्न होकर आपमें अपनी आपमय स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु के साथ सूर्य-प्रकाशवत् मिलकर रहना। यही-अवगुण छोड़नेक्रा त्याग स्वभाव गुणसे तन्मयी रहनेका-इस ग्रन्थमें कहा है।

जिसप्रकार दीपकज्योतिके प्रकाशमें कोई पाप करो या कोई पुण्य करो, उन पाप-पुण्यका फल तो स्वर्ग-नरकादि वे भी इस दीपकज्योतिको नहीं लगते तथा उसे पाप-पुण्य भी नहीं लगते; उसीप्रकार इस सम्यग्ज्ञानदीपिका पुस्तकको पढ़ने-वाँचने या उपदेश देनेसे किसीको अपनेमें अपने आपमय स्वस्वभाव-सम्यग्ज्ञानानुभवकी अचल परमावगाढ़ता होगी उसे पाप-पुण्य जन्म-मरण संसारका स्पर्श नहीं होगा, उसे किंचित् भी शुभाशुभ नहीं लगेंगे-ऐसा निश्चय है।

इति प्रस्तावना

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
प्रकाशकीय निवेदन	03
ग्रंथकारकी सूचना	11
ग्रंथकारकी प्रस्तावना	12
भूमिका	17
सम्यग्ज्ञानदीपिका प्रारम्भ	०१
वस्तुस्वभाव विवरण	०७
ज्ञानावरणीयकर्म विवरण	१९
दर्शनावरणीयकर्म विवरण	२३
वेदनीयकर्म विवरण	२७
मोहनीयकर्म विवरण	३१
आयुकर्म विवरण	३५
नामकर्म विवरण	३९
गोत्रकर्म विवरण	४३
अंतरायकर्म विवरण	४६
भ्रान्तिखण्डन दृष्टान्त	५०
(नय द्वारा आत्मवस्तु विवरण)	१२०
(आत्मप्राप्तिका प्रकार)	१२८
आकिंचन भावना	१४३
भेदज्ञान विवरण	१४५
ब्रह्मरूपी संवत्सर	१५१

चित्र-सूची

चित्र	पृष्ठ
चित्रद्वार	०६
चित्रहस्तांगुलि चक्र अथवा स्वरूपानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य	१०
ज्ञानावरणीय कर्मका चित्र	२०
दर्शनावरणीय कर्मका चित्र	२४
वेदनीय कर्मका चित्र	२८
मोहनीय कर्मका चित्र	३२
आयु कर्मका चित्र	३६
नाम कर्मका चित्र	४०
गोत्र कर्मका चित्र	४४
अंतराय कर्मका चित्र	४७
मोतीकी माला पुरुषके कंठमें है, परन्तु खोजता है भण्डारमें।	५३
संसार-दर्शन	६०
षट् मतवाले	६७
हे कबीर ! मोक्षकी सेन (संकेत) जैनकी प्रतिमामें रखी है।	६७
यह पुरुष वृक्षको बाथ भरकर खड़ा है और पुकारता है कि मुझे छुड़ाओ।	७६
साहूकारकी हवेलीमें एक श्वान रात्रिसमय चोरको देखकर. . . .	९०

दस पुरुष नदीं पार उतरे। नदी किनारे खड़े होकर गिनती करते हैं १०३

आवाज 'तूं ही।' प्रतिआवाज 'तूं ही।' १०८

मृतक वेश्याको देखकर कामी पुरुष विचार करता है कि ११६

सिंह अपनी छाया कुएँमें देखकर तथा स्वयं अपना स्वरूप भूलकर १३२

बन्दरने घड़ेमें मुट्ठी बाँधी है उसे छोड़ता नहीं और मानता है कि मुझे किसीने पकड़ लिया ! १३२

यह पुरुष अमावस्याकी रात्रिमें चन्द्रको ढूंढ़ता है, यदि चांदनीमें ढूंढ़े तो १३९

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

વીછે પાર્શ્વ જિન મંદિર

श्री

ॐ तत्सत्परब्रह्मपरमात्मने नमः

भूमिका

मैं, तूं, यह, वह ये चार शब्द हैं, उनका प्रथम निश्चय कोई है वही मूल अखण्डित अविनाशी अचल स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु भूमिका है। जैसे लाख योजन प्रमाण यह वलयाकार जम्बूद्वीपकी भूमिका है, उस भूमिकामें कोई एक अणुरेणु वा राई डाल दे तो अल्प दृष्टिवालेको ऐसा भास होता है कि इस जम्बूद्वीपकी भूमिकामें नहीं जाननेमें आता कि वह एक अणुरेणु राई किधर कहां पड़ी है, वैसे ही यह तीन सौ तेतालीस-३४३ (घन) राजुप्रमाण तीन लोक पुरुषाकार है, उसके बाद अलोकाकाश है। सो कैसा है अलोकाकाश ? जिसके भीतर यह तीन लोक ब्रह्माण्ड है, परन्तु ऐसा अनन्त ब्रह्माण्ड और भी होवे तो जिस अलोकाकाशमें अणुरेणुवत् होकर समा जावे ऐसा यह लोकालोक उस स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु भूमिकामें एक अणुरेणुवत् न जाने किधर कहाँ पड़ा है, इसलिये निश्चय समझो कि स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यज्ञानमयी स्वभाववस्तु है वह निश्चय भूमिका है। जैसे सूर्यका प्रकाश पृथ्वीके ऊपर तन्मयीवत् (तन्मय हुएके समान) सर्वत्र प्रसारित हो रहा है, उसमें एक अणुरेणु न जाने किधर कहाँ पड़ा है; वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके प्रकाशमें यह लोकालोक अणुरेणुवत् न जाने किधर कहाँ पड़ा है। वही त्रिलोकसार ग्रन्थमें श्रीमत् नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने

कहा है - ४६, ४०, ३४, २८, २२, १६, १०, १९।।, ३७।।, १६।।, १६।।, १४।।, १२।।, १०।।, ८।।, और ११ राजु, इस प्रकार सात नरक और आठ युगल - सोलह स्थानमें ३४३ राजु घनाकार लोक कहा है।

अब हे मुमुक्षुजन सज्जन मित्र हो ! श्रवण करो - जैसे यह लोकालोक है वह स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी भूमिकामें है, परन्तु वह सम्यग्ज्ञानमयी भूमिकाके साथ तन्मय नहीं है वैसे ही मैं, तूं, यह, वह ये चार भी तन्मय नहीं हैं, इसलिये अनहोनेवाला सो मैं क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास बनकर सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी यह पुस्तक बनाता हूं। इसं पुस्तकमें भूमिका सहित बारह (१२) स्थलभेद हैं। उनमें प्रथम तो मिथ्या भ्रमजालरूप संसारसे सर्वथा प्रकार भिन्न होनेके लिये इस भूमिकाको एकाग्र मन लगाकर पढ़ो।१।

तत्पश्चात् चित्रद्वार देखो तथा उसका विवरण पढ़ो। परन्तु द्वार ही को अपनी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यज्ञानमयी स्वभाववस्तु मत समझो, मत मानो, मत कहो।२।

पश्चात् तीसरा - स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य वस्तु स्वभावमें जैसा है वैसा ही है, स्वभावमें तर्क व संकल्प - विकल्पका अभाव है। उसीके प्रकाशमें उसीका परस्पर विरुद्ध चित्र हस्तांगुली सूचक है, मानता है, कहता है, पर वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यमें तन्मय कदापि किसी प्रकार भी नहीं सम्भवता।३।

पश्चात् चौथा ज्ञानावरणीयकर्मचित्र है। उसका अनुभव ऐसा समझना - जैसे सूर्यके आड़ा बादल समय पाकर स्वयं ही आते हैं और जाते हैं वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय आदि अजीव वस्तु आती है और

जाती है, अर्थात् ज्ञानका आवरण करती है वही ज्ञानावरणीय कर्म है।४।

पाँचवाँ भेद दर्शनावरणीय कर्म है। जैसे देखनेकी शक्ति तो है, परन्तु दर्शनावरणीय जातिका कर्म देखने नहीं देता।५।

छठा स्थल वेदनीय कर्म है। उसके दो भाग हैं-साता और असाता। जैसे तलवारमें लगी हुई मिश्रीकी चासनीको कोई पुरुष जीभसे चाटता है, उसी समय किंचित् मिष्ट स्वादका भास होता है और अधिक जिह्वाखंडनके दुःखका भास होता है। इस दुःख-सुखसे भिन्नस्वभाव होना श्रीगुरुके उपदेशसे।६।

सातवाँ स्थल मोहनीय कर्म है. जैसे मदिरावश अपने धनकी खबर नहीं रहती वैसे ही मोहनीय कर्मवश स्वयंको स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावस्वरूप नहीं समझता है, नहीं मानता है तथा स्वयंको औरसे और रूप समझता है, मानता है।७।

आठवाँ स्थल आयुकर्म है। जैसे बेड़ीसे बंधा हुआ पुरुष स्वयंको दुःखी समझता है, मानता है, वैसे ही आयुकर्मवश स्वभावदृष्टिरहित जीव, स्वयंको दुःखी मानता है, समझता है, अर्थात् स्वभावदृष्टिरहित जीवको यह निश्चय नहीं कि आकाशवत् अमूर्तीक निराकार घटआयु - पटआयुवत् मैं आयुकर्ममें रुक रहा हूं व्यवहारनयसे।८।

नौवां स्थल नामकर्म है। जो स्वभावदृष्टिरहित है वह नामको ही अपनी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु समझता है, मानता है। मिथ्यादृष्टिको यह निश्चय नहीं कि जन्म, मरण नामादिक शरीरका धर्म है, ज्ञानवस्तुका यह निज धर्म नहीं।९।

दशवाँ स्थल गोत्रकर्म है। उसका दृष्टान्त-जैसे कुम्भकार छोटा-मोटा माटीका बर्तन बनाता है वैसे ही स्वभावदृष्टिमें नीचगोत्र-उच्चगोत्रका सम्भव नहीं, वही जीव विभावदृष्टिमें नीचगोत्र उच्चगोत्र

कर्मको करता है, तो भी नीचगोत्र उच्चगोत्रसे तन्मय होकर नहीं करता है।१०।

ग्यारहवाँ स्थल अन्तराय कर्म है। उसका दृष्टान्त-जैसे राजाने भण्डारीसे कहा कि इसे एक हजार रुपया दो, परन्तु भण्डारी नहीं देता है, वैसे ही स्वभावदृष्टि रहित जीव इच्छा तो करता है कि 'मैं दान दूं, लाभ लूं, भोग भोगूं, उपभोग भोगूं और पराक्रमकर्म - बलवीर्य प्रगट करूं' इत्यादि इच्छा तो करता है, परन्तु अन्तरायकर्म इच्छानुसार पूर्णता नंहीं होने देता। ऐसा यह अन्तराय-विघ्न श्री सद्गुरुके चरणोंकी शरण होनेसे मिटेगा।११।

बारहवें स्थलमें यह है कि किसीको गुरु - उपदेशसे स्वस्वरूपका स्वानुभव होनेके बाद भी ऐसी भ्रान्ति होती है कि मैं अजर अमर अविनाशी अचल ज्ञानज्योति नहीं, अथवा हूं तो किस रीतिसे हूं, मेरा और सदाकाल जागती ज्योति ज्ञानमयी सिद्ध परमेष्ठीका एकपना किस रीतिसे है तथा कौनसा पुण्यरूप शुभ कार्य करनेसे मेरा और परमात्माका अचल मेल होगा ? प्रत्यक्ष मैं मरता हूं, जन्मता हूं, दुःखी-रोगी-शोकी- लोभी-क्रोधी-कामी हूं, और ज्ञानमयी परमात्मा तो न मरता है, न जन्मता है और न रोगी, शोकी, न लोभी, न मोही, न क्रोधी, न कामी होता है; फिर उसका और मेरा मेल कैसे है, कैसे होगा ? इत्यादि भ्रान्ति द्वारा कोई जीव स्वयंको उस ज्ञानमयी सिद्ध परमेष्ठीसे भिन्न समझता है, मानता है, कहता है। उनकी एकता तन्मयताकी सिद्धि-अवगाढता- दृढ़ताके लिये अनेक दृष्टान्तों द्वारा समाधान करूंगा।१२।

कोई मुमुक्षु इस सम्यग्ज्ञानदीपिका पुस्तकको आदिसे अन्तपर्यन्त भले भावसे पढ़कर अपनी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको प्रथम तो अशुभ जो पाप-अपराध-हिंसा-चोरी-काम-क्रोध-

लोभ-मोह-कषायादिकसे सर्वथा प्रकार भिन्न समझ करके पश्चात् दान-पूजा-व्रत-शील-जप-तप-ध्यानादिके शुभकर्म क्रियाको भी सोनेकी बेड़ीवत् बन्ध-दुःखका कारण समझ करके आपकी आपमें आपमयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञान स्वभाववस्तुको दान-पूजादिक शुभकर्म क्रियासे सर्वथा प्रकार भिन्न समझ करके पश्चात् शुद्धसे भी स्वयंको भिन्न समझ करके आगे अनिर्वचनीय आपका आपमें आपमय, जैसाका तैसा, निरन्तर जैसा है वैसा, वहका वही आदि-अन्तपूर्ण स्वभावसंयुक्त रहना। और ऊपर हमने लिखा है कि शुभ, अशुभ और शुद्ध ये तीन हैं, इन तीनकी विस्तीर्णता (यथायोग्य) प्रथम मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर अन्तका चौदहवाँ गुणस्थान जो अयोगकेवली वहाँ तक समझना। स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावमें ये शुभ, अशुभ तथा शुद्धादिक संकल्प-विकल्प, तर्क-वितर्क, विधि-निषेध कभी भी सम्भव नहीं हैं, अर्थात् स्वभावमें तर्कका अभाव है।

हे मुमुक्षु जीवमण्डली ! चेत (सावधानी, ज्ञान) करो - तुम कहाँ से आये हो, कहाँ जाओगे, तुम कहाँ हो, क्या हो, कैसे हो, तुम्हारा कौन है, तुम किसके हो। तथा ये शुभ, अशुभ, शुद्ध इन तीनसे तुम्हारी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको एक तन्मयी मत समझो, मत मानो, मत कहो। ये अशुभादिक तीन सम्यग्ज्ञानस्वभावमें त्याज्य ही हैं। जिस भूमिमें यह लोकालोक अणुरेणुवत् न जाने किधर कहाँ पड़ा है, चलाचलरहित ऐसी भूमिकासे सर्वथा प्रकार भिन्न तुम्हारा तुमसे सदाकाल तन्मयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुस्वरूप समझो, मन द्वारा मानो। जैसे दीपकके देखनेसे दीपककी निश्चयता-अवगाढता-अचलता होती है वैसे ही इस सम्यग्ज्ञानदीपिकाके पढ़ने-वाँचनेसे जरूर निश्चय ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तकी प्राप्ति होगी तथा सम्यक्त्वकी प्राप्तकी प्राप्ति

निश्चयता-अवगाढता-अचलता होगी।

देखो ! श्रवण करो ! जैनाचार्योने जैनग्रन्थमें कहा है कि सम्यक्त्व बिना जप, तप, नियम, व्रत, शील, दान, पूजादिक शुभकर्म-शुभभावादिक वृथा तुषखण्डवत् हैं। तथा विष्णु (विष्णु ग्रन्थ) में भी कहा है कि 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः अर्थात् ब्रह्मको तो जानता नहीं और संध्या, तर्पण, गायत्रीमंत्रादिकका पढ़ना आदि साधु-संन्यासी वेष धरना ये सब वृथा हैं। सर्व सारका सार-सदाकाल ज्ञानमयी जागती ज्योतिके लाभकी जिसको इच्छा हो तथा जन्म-मरणादिक वज्रदुःखसे सर्वथा प्रकार भिन्न होनेकी जिसको इच्छा हो वह प्रथम गुरुआज्ञा लेकर इस पुस्तकको आदिसे अन्त तक पढ़े।'

स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुकी प्राप्तकी प्राप्तिके लिये हमने इस पुस्तकमें अशुभ, शुभ, शुद्ध इन तीनोंका निषेध लिखा है, उन्हें तो पुद्‌गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य इन पाँच द्रव्योंसे तन्मयी अस्तिरूप समझना। तथा कोई अशुभके साथ अपने स्वरूपज्ञानकी एकता मानता है, समझता है, कहता है वह भी मिथ्यादृष्टि है। तथा अशुभको खोटा-बुरा समझकर कोई जप, तप, व्रत, शील, दान, पूजादिक शुभके साथ अपने स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानस्वभावकी एकता समझता है, मानता है, कहता है वह भी मिथ्यादृष्टि है। तथा शुभ-अशुभ दोनोंको और अपने स्वभाव सम्यग्ज्ञानको एक तन्मयी समझता है वह भी मिथ्यादृष्टि है। तथा किसीके यह विचारभाव होता है कि शुभाशुभसे भिन्न मैं शुद्ध हूं, एसे विकल्पके साथ अपने स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावको एक तन्मयी समझता है, मानता है, कहता है सो उसे भी स्वभावपूर्णदृष्टिरहित समझना।

स्वभाव सम्यग्ज्ञानदृष्टिवाला कोई पण्डित होगा वह तो इस

पुस्तककी अशुद्धता - पुनरुक्तिदोषको कदाचित् किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं करेगा। परन्तु जो न्याय, व्याकरण, तर्क, छन्द, कोष और अलंकारादि शुद्ध शास्त्रसे अपने स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानस्वभावको अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मयी समझता है, मानता है, कहता है ऐसा पण्डित जरुर इस ग्रन्थकी अशुद्धता-पुनरुक्तिदोषको ग्रहण करेगा। तथा जिस प्रकार स्वयंसिद्ध परमात्मा अष्टकर्म तथा द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरहित अखण्ड अविनाशी अचलसे सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयी वस्तु है उस वस्तुका लाभ वा प्राप्तकी प्राप्ति होने योग्य थी वह हमको हुई। यथा -

होनी थी सो हो गई, अब होनेकी नाहिं।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, इसी जगतके मांहि।।१।।

अर्थात् जैसे दीपकसे दीपक चेतता आया है वैसे ही गुरु-उपदेश द्वारा ज्ञान होता आया है; यह वार्ता अनादि है, सद्‌भूत व्यवहारमें। जो कोई गुरुके वचन द्वारा स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुकी प्राप्तकी प्राप्ति होनेके बाद ऐसे अपूर्व उपकारका लोप कर गुरुका नाम प्रसिद्ध नहीं करता है, गुरुकी कीर्ति, महत्ता, यश और गुणानुवाद नहीं करता है वह महापातकी, पापी, अपराधी, मिथ्यादृष्टि और हत्यारा है, अर्थात् गुरुपदको कदाचित् किसी प्रकार भी गुप्त रखना श्रेष्ठ नहीं है। यही मेरे द्वारा मैं सत्य कहता हूँ।

मेरे शरीरका नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है। वर्तमान कालमें वही मैं कहता हूं, श्रवण करो-मालवा देश मुक्काम झाल्लरापाटनमें नग्न दिगम्बर श्रीमत् सिद्धसेन मुनि तो मुझे दीक्षा-शिक्षा, व्रत-नियम

और व्यवहार वेशका दाता गुरु है तथा वराड देशमें मुक्काम कारंजा पट्टाधीश श्रीमत् देवेन्द्रकीर्तिजी भट्टारकके उपदेश द्वारा मुझे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुकी प्राप्तकी प्राप्ति देनेवाले श्रीसद्गुरु देवेन्द्रकीर्तिजी हैं, इसलिये मैं मुक्त हूँ, बन्ध-मोक्षसे सर्वथा प्रकार वर्जित सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु हूं। वही स्वभाववस्तु शब्दवचनद्वारा श्रीमत् देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे रतनकीर्तिजीको मैं भेटस्वरूप अर्पण कर चुका हूं। तथा खानदेश मुक्काम पारोलामें सेठ नानाशाह तत्पुत्र पीताम्बरदासजी आदि बहुतसे स्त्री-पुरुषोंको तथा आरा, पटना, छपारा, बाढ़, फलटन, झालरापाटन, बुरहानपुर आदि बहुतसे शहर-ग्रामोंमें बहुतसे स्त्री-पुरुषोंको स्वभावसम्यग्ज्ञानका उपदेश दे चुका हूँ। पूर्वमें लिखा हुआ सर्व व्यवहारगर्भित समझना। तथा सर्व जीवराशि जिस स्वभावसे तन्मयी है उसी स्वभावकी स्वभावना सर्व ही जीवराशिको होओ ऐसी मेरे अन्तःकरणमें इच्छा हुई है उस इच्छाके समाधानके लिये यह पुस्तक बनाई है और उसकी पांचसौ पुस्तक छपाई है। ये पांचसौ पुस्तक प्रसिद्ध करनेमें सहायता स्वरूप रुपया १००) एक सौ जिला शहाबाद मुक्काम आरामें मक्खनलालजी कोठीमें बाबू विमलदासजी की विधवा वहकी वही तथा हमारी शिष्या द्रौपदीदेवीने दिया है। विशेष खर्चके लिये ज्यों ज्यों मेरे वचनोपदेश द्वारा स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु होने योग्य होती जाय वे सदाकाल अखण्ड अविनाशी चिरंजीव रहो।

इसप्रकार सम्यग्ज्ञानदीपिका की प्रथम भूमिका समाप्त।

प्रश्न :- जिनेन्द्र कौन है ? उत्तर :- ज्ञानभानु जिनेन्द्र है। प्रश्न :- जिनेन्द्रकी पूजा करना कि न करना ? उत्तर :- पूजा करना, परन्तु सम्यग्ज्ञान वस्तु है वही जिनेन्द्र है। अज्ञान वस्तुको कोई जिनेन्द्र मानता है, समझता है, कहता है वह मिथ्यादृष्टि है। प्रश्न :- ज्ञान कौन है ? उत्तर :- तन-मन-धन-वचनको तथा तन-मन-धन-वचनके जितने शुभाशुभ व्यवहार-क्रिया-कर्मको अनादिसे ही सहज स्वभावसे ही जानता है वही ज्ञान है । प्रश्न :- मन्दिरमें पद्मासन- खड्गासन धातु-पाषाणकी मूर्ति है, शास्त्र तथा जल-चन्दनादि अष्ट द्रव्य और मन्दिर आदि ये सब ज्ञान है कि अज्ञान है ? उत्तर-मन्दिर प्रतिमादिक अज्ञान-अजीव है, इन सबको मात्र जो जानता है वही ज्ञान है। प्रश्न :- केवल ज्ञान है वह शुभाशुभ दानपूजादि-क्रिया-कर्मका कर्ता है कि कर्ता नहीं है ? उत्तर :- केवल ज्ञान है वह किंचित् मात्र भी शुभाशुभ दान-पूजादि क्रिया-कर्मको नहीं करता है, मात्र जानता ही है। प्रश्न :- तो ये शुभाशुभ (भाव) कौन करता है ? उत्तर :-निश्चयनयसे जिसका जो उसका वही कर्ता है तथा व्यवहारनयसे शुभाशुभकर्मसे अतत्स्वरूप अतन्मयी होकर ज्ञान कर्ता है।

क्या करूँ ? कहते हुए लाज-शरम उपजती है तो भी कहता हूं। जैसे सूर्यसे प्रकाश कभी भी न भिन्न हुआ, न होगा, न भिन्न है, उसी प्रकार जिससे देखना-जानना कभी भी भिन्न हुआ नहीं, भिन्न होगा नहीं, भिन्न है नहीं ऐसा केवल ज्ञानमयी परमात्मासे नेत्रका एक टिमकारमात्र वा समयकालमात्र भी कोई जीव भिन्न रहता है वह जीव संसारी मिथ्यादृष्टि पातकी है। जिस प्रकार सूर्यसे अन्धकार अलग है उसी प्रकार ज्ञानस्वरूपी जिनेन्द्रसे आपको अगल समझकर धातु- पाषाणकी देवमूर्तिका दर्शन-पूजादिक करता है वह मूर्ख

मिथ्यादृष्टि है। तथा जिस प्रकार सूर्यसे प्रकाश तन्मयी है उसी प्रकार ज्ञानस्वरूपी जिनेन्द्रसे गुरु-उपदेशानुसार तन्मयी होकर पश्चात् धातु-पाषाणकी मूर्तिका दर्शन-पूजादिक करता है वह सम्यग्दृष्टि धन्यवादयोग्य है।

हे मेरे मित्र ! दान, पूजा, व्रत, शील, जप, तप, और नियम आदि शुभकर्म क्रियाभाव करो तथा अशुभ जो पाप, अपराध, झूठ, चोरी, काम और कुशील भी करो, अर्थात् शुभाशुभ काम-कर्म-क्रिया इच्छानुसार भले करो, परन्तु समझकर करो। लौकिक वचन भी प्रसिद्ध है-देखो भाई ! जो तुम समझकर काम-कार्य करते तो नुकशान-बिगाड़ किसलिये होता, बिना समझे तुमने यह काम-कार्य किया, इसलिये नुकशान हुआ। तुमने पहले अनन्त बार प्रत्यक्ष समवसरणमें केवली भगवानकी मोतीके अक्षत, रत्नदीप और कल्पवृक्षके पुष्प आदिसे पूजा की, प्रत्यक्ष दिव्यध्वनि सुनी, मुनिव्रत-शील अनन्तबार धारण किया और काम, क्रोध, लोभादिक भी अनन्त कालसे करते चले आये हो, इस प्रकार सर्व शुभाशुभ बिना समझे करते चले आये हो।

देखो ! बिना समझे कण्ठमें मोतीकी माला है पर भण्डारमें खोजता है; बिना समझे ही कस्तूरीमृग कस्तूरीको खोजता है; बिना समझे ही अपनी ही छायाको भूत मानता है; बिना समझे ही नदीके जलको शीघ्र बहता हुआ देखकर अपनेको ही बहता हुआ मानता है; बिना समझे ही काँखमें पुत्र है पर ग्राम-देशमें खोजता है; बिना समझे ही संसारी मिथ्यात्वी विषय-भोग काम कुशील तो छोड़ते नहीं और दान, पूजा, व्रत, शीलादिक छोड़कर आपको ज्ञानी मानते हैं, कहते हैं, समझते हैं; तथा बिना समझे ही सदाकाल जागती ज्योति स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुकी कभी भी तन्मयता तो स्वयंके साथ हुई नहीं, पर मूर्ख हुआ व्रत, जप, तप, शील,

दान और पूजादिक करता है; वह सब घृतके लिये जलके मन्थनके समान निरर्थक है। इसलिये सब शुभाशुभ व्यवहारक्रियाकर्मकी और जन्म-मरण-नाम-जाति-कुल तथा तन-मन-धन-वचनादिकी प्रथम समझ होना श्रेष्ठ है।

इस प्रकार भूमिका समाप्त हुई।

'मैं ज्ञानमात्र हूँ'

⌘

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिनरात रहे तद्‌ध्यान महीं;
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वरते जयते.

⌘

पावन मधुर अद्‌भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्‌भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्‌रस भर्यां.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्यां,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो ह्रदयमां रमी रह्यां.

⌘

हुं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे.

⌘

सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु

⌘

બોરીવલી જિન મંદિર

ॐ नमः

सम्यग्ज्ञानदीपिका प्रारम्भ

स्वस्वरूप स्वानुभवसूचक श्लोक

महावीरं नमस्कृत्य केवलज्ञानभास्करम्।
सम्यग्ज्ञानदीपस्य मया किंचित् प्रकाश्यते।।

अथ अनादि-अनन्त जिनेश्वरं
सरस सुन्दर बोधमयी परं।
परम मंगलदायक है सही
नमत हूं इस कारण शुभ मही।।

अथ वचनिका :- मूल वस्तु दो हैं-ज्ञान और अज्ञान। जिस प्रकार सूर्यमें प्रकाशगुण है उसी प्रकार जिस वस्तुमें देखने-जाननेका गुण स्वभावसे ही है वह वस्तु तो केवल ज्ञान है तथा जिस वस्तुमें स्वभावसे ही देखने-जाननेका गुण नहीं है वही अज्ञान वस्तु है। ये तन, मन, धन, वचन-शब्दादिक अज्ञानके साथ ऐसे मिले हुए हैं जैसे काजलके साथ कलंक मिला हुआ है। तथा जैसे केवल ज्ञानमें देखने-जाननेका गुण है वैसे ही शब्दमें कहनेका गुण है।

ज्ञानवस्तु स्व-परको देखता है जानता है। वह आपही आपको तो आपसे आप तन्मयी होकर जानता है तथा ज्ञानसे सर्वथा प्रकार भिन्न वस्तु है उसे ज्ञान जानता तो है, परन्तु जड़ अज्ञानमयी वस्तुसे तन्मयी होकर नहीं जानता है। तथा कहनेका गुण अज्ञानमयी शब्दमें है। वह शब्द स्व-परकी वार्ता कहता है, परन्तु वह स्व-परको जानता नहीं है। अपनेसे तो तन्मयी होकर कहता है और परसे अतन्मयी होकर कहता है। स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु है उसमें और शब्दादिक अज्ञानवस्तु है उसमें परस्पर सूर्य-अन्धकार उतना अन्तरभेद मूलसे ही है तो भी शब्द है, वह परमात्मा ज्ञानमयीकी वार्ता कहता है।

प्रश्न :- शब्द अज्ञानवस्तु है; वह सम्यग्ज्ञानमयी परमात्माको जानता नहीं तो फिर वह सम्यग्ज्ञानमयी परमात्माकी वार्ता कैसे कहता है?

उत्तर :- जैसे कोई चन्द्रदर्शनका लोभी किसी गुरुसंगसे नम्रतापूर्वक पूछता है कि 'चन्द्र कहाँ है ?' तब गुरुने कहा कि 'वह चन्द्रमा मेरी अंगुलीके ऊपर है।' अब यहाँ विचार करो कि शब्द, अंगुली और चन्द्रमें जितना अन्तरभेद है उतना ही भेद सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मामें और शब्दमें समझना।

इस प्रकार कहनेका गुण तो शब्दमें है तथा जाननेका गुण केवल ज्ञानमें है। जैसे जिस नगरमें अज्ञानी राजा है उसके ऊपर केवल ज्ञानी राजा हो सकता है, परन्तु जिस नगरमें केवल ज्ञानी राजा है उसके ऊपर कोई भी अधिष्ठाता राजा होना सम्भव नहीं है।

अब हे केवल ज्ञानमयी सूर्य ! तूं मूल स्वभावसे ही जैसाका तैसा-जैसा है तैसा-वहीका वही है, तूं केवल ज्ञानमयी सूर्य ही है, तूं न सुनता हुआ ही सुन, तेरे करम-भरम, पुद्गलका विकार, काला,

पीला, लाल, धोला, लीला तथा अनेक पाप-पुण्यरूपी बादल- बिजली आदि आड़ा आवे-जावे तो भी तूं अपनेको केवल ज्ञानमयी सूर्य ही समझ, मान। जो तूं अपनेको केवल ज्ञानमयी सूर्य नहीं समझेगा, नहीं मानेगा, तो तुझे अपने ही घात करनेका पाप लगेगा। (प्रसिद्ध वचन है-) आपघाती महापापी।

प्रश्न :- हाँ ! हाँ ! ! हाँ ! ! ! मैं केवल ज्ञानमयी सूर्य तो निश्चय हूं परन्तु मैं तन, मन, धन, वचनादिकसे उसी प्रकार भिन्न हूँ जिस प्रकार अन्धकारसे सूर्य भिन्न है, फिर मैं स्वयंको केवल ज्ञानमयी सूर्य किसके द्वारा होकर समझूं, मानूं वह कहो।

उत्तर :- न सुनता हुआ ही सुन। श्री आत्मख्याति ग्रन्थमें श्री कुन्दकुन्द आचार्यने ग्रन्थके प्रथम प्रारम्भमें ही कहा है-जीवद्वार, अजीवद्वार, आस्त्रवद्वार, संवरद्वार, निर्जराद्वार, बन्धद्वार, मोक्षद्वार, पापद्वार, पुण्यद्वार, सर्वविशुद्धिद्वार, कर्ताद्वार और कर्मद्वार, ये बारह द्वारा तूं स्वयंको निश्चयसे समझ; तथा मैं, तूं यह और वह इन चार द्वारा द्वाररूप होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; व तन, मन, वचन, धनादिके द्वारा तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा पुद्गल तो आकार (रूप) और धर्म, अधर्म, आकाश, काल है वह [१] निराकार (है), इसलिये आकार-निराकार द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा 'नहीं और है' इन दोके द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा निश्चयव्यवहारके द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव इन चार द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा जन्म-मरण, सुख-दुःख, शुभ-अशुभ विचारके द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा संकल्प-विकल्प, भाव-अभावके द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; वेद-पुराण-शास्त्र-सूत्र-सिद्धान्तके द्वारा होकर

१. अरूपी

तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मके द्वारा होकर तूं स्वयंको निश्चय समझ; तथा पूर्वोक्त समझसे विशेष समझ; गुरुके वचन द्वारा तूं स्वयंको निश्चय समझ।

और सुन ! जैसे सूर्य और प्रकाश एकमयी है वैसे पूर्वोक्त द्वारको और तूं स्वयंको एकमयी समझेगा, मानेगा तो तूं आपघाती महापापी मिथ्यादृष्टि हो जायगा। और भी सुनो-जैसे कोई द्वारको ही अपना स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव समझेगा तो वह आपघाती महापापी मिथ्यादृष्टि होकर रहेगा। जैसे एक बड़े भारी नगरके अनेक सुन्दर द्वार हैं, वहाँ जैसी इच्छा हो, किसी भी द्वारमेंसे होकर शहरमें प्रवेश करो, प्रवेश करनेवाला नगरमें पहुँच जायगा। विचार करना ! शहरके भीतर महल-मन्दिर-मकान हैं। उनके सहस्त्र लक्ष आदि द्वार हैं। तथा शहरमें प्रवेश करनेवालेके शरीरमें दस द्वार तो प्रसिद्ध ही हैं। इतना विशेष कि रोम-रोमके प्रति छिद्र हैं, अतः शहरमें प्रवेश करनेवालेके शरीरमें ही लक्ष- कोटि आदि द्वार हैं, अतः पूर्वोक्त विचार द्वारा अनादि अनन्त संसार- अपार संसार के द्वारा होकर अपनी आपमें आपमयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको और पूर्वोक्त द्वारको अग्नि- उष्णतावत् एक मत समझो, मत मानो। जैसे 'राजद्वार' ऐसा कहनेसे यह भाव भासता है कि जिस द्वारके भीतर होकर राजा आता है-जाता है, परन्तु ऐसा नहीं समझना कि 'राजा है वही द्वार है, तथा द्वार है वही राजा है' केवल कथनमात्र राजद्वार है, अर्थात् द्वार है वह द्वार ही है और राजा है वह राजा ही है, वैसे ही सब द्वार-द्वारके प्रति समझना कि जिसका जो, वही द्वार है। कारण कि सूर्यको देखनेसे सूर्यकी खबर होती है वैसै ही जिसको देखनेसे जिसकी (उसकी) ही खबर होती है। यह सब अनहोनीसी युक्ति

स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुकी प्राप्तकी प्राप्तिके लिये हमने की है। और भी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु सूचक युक्ति आगे कहेंगे। तुम इस द्वारमेंसे होकर आओ जाओ, अथवा अमुक द्वारमेंसे होकर आओ जाओ, मोक्षद्वार, जीवद्वार, अजीवद्वार, ध्यानद्वार, इत्यादिक द्वारमेंसे होकर आओ जाओ। यहि नहीं आओ, नहीं जाओ, तो तुम तुम्हारे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावमें जैसाका तैसा, जैसा हो वैसा, वहका वही-हो वही रहो।

हे सूर्य ! तूं तेरे प्रकाशगुण-स्वभावको त्याग कर अमावस्याकी मध्यरात्रिके अन्धकारवत् मत होना, न होना, वैसे ही हे केवल ज्ञानमयी सूर्य ! तूं तेरे गुण-स्वभावसे निरन्तर सदाकाल उदयरूप है, वहका वही रहना। कदाचित् कोई प्रकार भी तूं तन-मन-धन- वचन-शब्दादिक व पुद्‌गल धर्म-अधर्म-आकाश-कालादिवत् मत होना, न होना।

इस प्रकार चित्रद्वार विवरण युक्तिसंपूर्ण, दो हस्तांगुलि चित्र द्वारा परस्पर उपदेशरूप सूचक है, उसका अनुभव ऐसा लेना कि-यह एक द्वार है; वहाँ एक कहता है कि इस द्वारमेंसे होकर तुम इस तरफ जाओगे तो तुम्हें जीव-चेतन-ज्ञानका लाभ होगा। दूसरा कहता है कि इस द्वारमेंसे होकर तुम इस तरफ जाओगे तो तुम्हें अजीव-अचेतन-अज्ञान और जड़का लाभ होगा। यदि तुम हमारे कहनेसे जीव-अजीव, ज्ञान-अज्ञानके लक्ष्य-लक्षण जात्यादि परस्पर भिन्न-अभिन्न समझकर दुविधा-द्वैतपनेका विकल्प त्यागकर दोनों तरफ नहीं जाओगे तो तुम अपने स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावमें स्वभावसे ही जैसाका तैसा, जैसा हो वहका वहीं, जहाँके तहाँ चलाचल रहित रहोगे।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

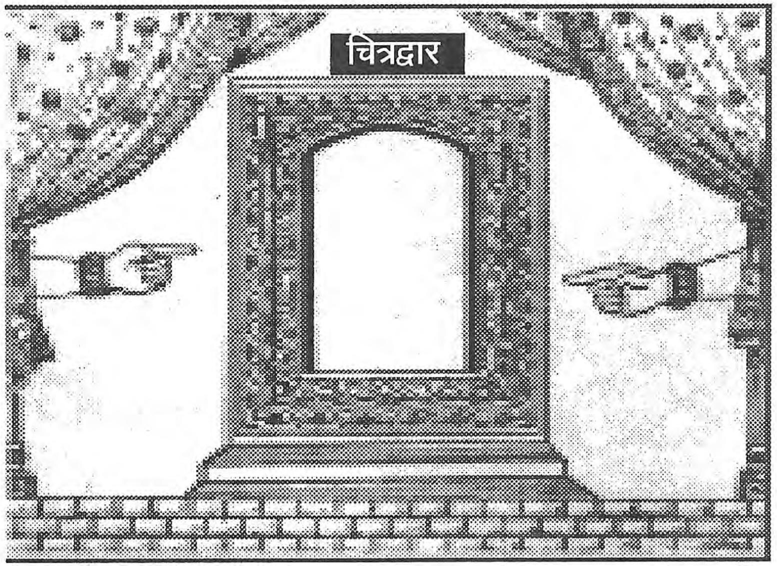

चित्रद्वार

पृष्ठ - ५

ॐ नमः

वस्तुस्वभाव विवरण

सम्यग्ज्ञान स्वभावमें लीन भये जिनराज।

धर्मदास क्षुल्लक करे नत्वा (आनति) निश-दिन साज (जास)।

मूल वस्तु दो हैं-एक ज्ञान दूसरा अज्ञान । तथा अज्ञान वस्तु पांच हैं-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये पांच द्रव्य हैं। उनमेंसे पुद्गल तो मूर्तिक-साकार है, शेष चार द्रव्य अमूर्तिक-निराकार हैं। उनमें ज्ञानगुण नहीं है । जीव भी अमूर्तिक-निराकार है, परन्तु जिस प्रकार सूर्यमें प्रकाशगुण है उसी प्रकार जीवमें ज्ञानगुण है। अतः जीव वस्तु उत्तम है। परन्तु जो जीव गुरुके उपदेशसे अपनी आपमें आपमयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु जान गया वह तो उत्तम है-पूज्य है-मान्य है-धन्यवादयोग्य है। परन्तु जैसे बकरियोंकी मण्डलीमें जन्म समयसे ही परवश होकर सिंह रहता है, वह स्वयंको सिहस्वरूप समझता नहीं-मानता नहीं, वैसे ही जो जीव अनादि कर्मवश संसारकारागृहमें है वह अपने आपमें आममयी सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावगुणको तो जानता नहीं-मानता नहीं, परन्तु अनादि कर्मवश स्वयंको ऐसा मानता है कि जो यह जन्म, मरण, नाम, अनाम, आकार, निराकार, तन, मन, धन, वचन, बुद्धि, संकल्प, विकल्प, राग, द्वेष, मोह, काम, कर्म, क्रोध, मान, माया,

लोभ, पाप, पुण्यादिक हैं वही मैं हूं, अर्थात् स्वरूपज्ञान रहित है, वह जीव तो है, परन्तु अशुद्ध संसारी जीव है।

अब एक-दो, संख्या-असंख्या, एकान्त-अनेकान्त, एक-अनेक, द्वैत-अद्वैत आदिसे सर्वथा प्रकार भिन्न एक स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु चलाचल रहित है। विशेष स्वानुभव आगे चित्रद्वारा लेना तथा साधारण अभी लेना। सर्व वस्तु अपने-अपने स्वभावमें मग्न है। कोई भी वस्तु अपने स्वभावगुणको उल्लंघन कर तथा पर स्वभावगुणको उल्लंघन कर परस्वभावगुणको ग्रहण करती नहीं। वस्तु अपने गुणस्वभावको छोड़ दे तो वस्तुका ही अभाव हो जाय और वस्तुका अभाव होने पर आत्मा-परमात्मा तथा संसार-मोक्षादिकका भी अभाव हो जायगा, तथा संसार-मोक्षादिकका अभाव होने पर शून्य दोष आ जायगा। अतः जितनी कोई वस्तु है वह सर्व वस्तु अपने-अपने स्वभावमें जैसी है वैसी है। इसी प्रकार स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी वस्तु भी स्वभावमें जैसी है वैसी ही है, वह है ही है। स्वभावमें तर्कका अभाव है।

तथापि अनादिकालसे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी वस्तुसे सर्वथा प्रकार भिन्न एक अज्ञानमयी वस्तु है। उसमें कहनेका, विचार-चिन्तवन, संकल्प-विकल्प आदि बहुत गुण हैं। वही व जड़मयी अज्ञानवस्तु अनेक प्रकारसे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको मानता है-कहता है, परन्तु वह सम्यग्ज्ञानस्वभावमें सम्भवता नहीं, इसलिये मिथ्या है, जैसी मानती है-कहती है वैसी वह वस्तु है नहीं, क्योंकि वस्तु अपने स्वभावमें जैसी है वैसी है, वह है ही है। तथा जड़ अज्ञानमयी वस्तु है वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको इस प्रकार मानती है-कहती है, वही कहते हैं-वह स्वस्वरूपी स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुतो अपनेआप अपने

ही स्वभावमें है, वह तो जहाँकी तहाँ, जैसीकी तैसी, जैसी है वैसी, वहकी वही, है, जिसे कोई तो निराकार मानता है-कहता है, और उसी वस्तुका कोई आकार मानता है-कहता है, अर्थात् उसी वस्तुको कोई कैसा मानता है, कोई कैसा मानता है।

अब देखो ! चित्रहस्त परस्पर सम्यग्ज्ञानस्वभाव वस्तुको अंगुलीसे सूचित करता है-पूर्व (दिशा) वासी कहता है-मानता है कि वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु पश्चिममें है, पश्चिम (दिशा) वासी कहता है-मानता है कि वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु पश्चिममें नहीं है, किन्तु वह वस्तु पूर्वमें है, दक्षिणवासी कहता है-मानता है कि वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु पूर्वमें नहीं तथा पश्चिममें नहीं, वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु तो उत्तरमें है, उत्तरवासी कहता है कि वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु तो पूर्व-पश्चिम-उत्तरमें भी नहीं किन्तु वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु दक्षिणमें है। इसी प्रकार आग्नेयकोणवासी उस वस्तुको वायव्यकोणमें मानता है, वायव्यकोणवासी उस वस्तुको आग्नेयकोणमें मानता है, नैऋतकोणवासी उस वस्तुको ईशानकोणमें मानता है और ईशानकोणवासी उस वस्तुको नैऋतकोणमें मानता है। इस प्रकार निश्चयावलम्बी व्यवहारको निषेधता है तथा व्यवहारलम्बी निश्चयको निषेधता है । यथा-

(सवैया)

एक कहूं तो अनेक हि दीखत एक अनेक नहीं कछु ऐसो,
आदि कहूं तो अन्त ही आवत आदिसु अन्तसु मध्यसु कैसो।
गुप्त कहूं तो अगुप्त रहै कहाँ गुप्त अगुप्त उभय नहिं ऐसो,
जो हि कहूं सो है नहिं सुन्दर है तो सही पण जैसोको तैसो।।

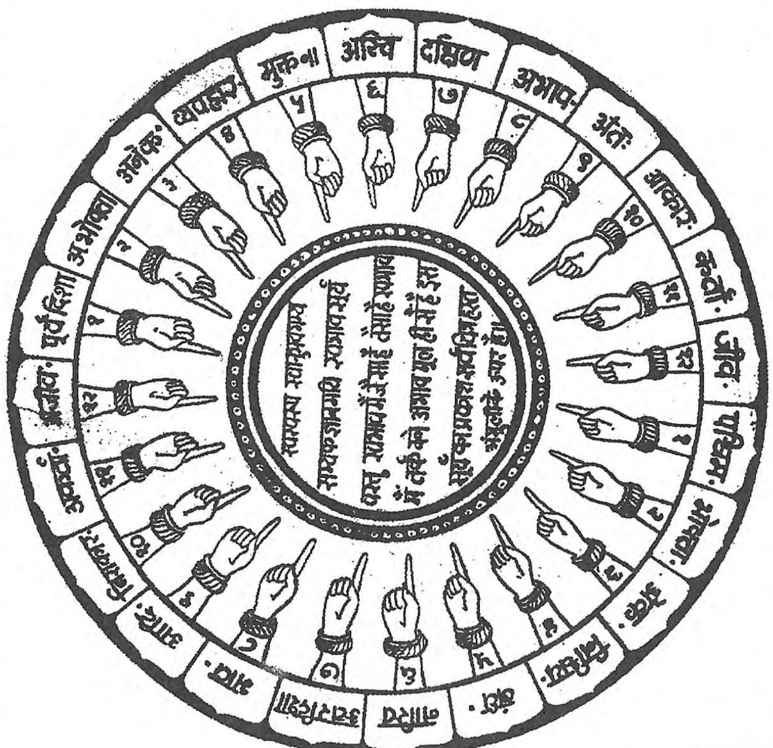

चित्र हस्तांगुलि, चक्र अथवा स्वरूपानुभवगम्य
सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य
पृष्ठ - ९

उस सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको कोई कैसे मानता है, कोई कैसे मानता है, परन्तुं मानो भले, वस्तु ये मानते हैं वैसी है नहीं। **भावार्थ :-** वस्तु अपने स्वभावमें जैसी है वैसी है, वही है; वस्तुके स्वभावमें तर्कका अभाव है।

(चोपाई)

'ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने, नाश करणको उद्यम ठाने। वस्तु स्वभाव मिटे नहिं क्यूं ही, तातें खेद करे शठ यूं ही।।'

(दोहा)

'वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख उपझे, अनुभव ताको नाम।।'
'अनुभव चिन्तामणिरतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्षको, अनुभव मोक्षस्वरूप।।'

अर्थात् यह जितने नय, न्याय, एकान्त, अनेकान्त, निश्चय, व्यवहार, स्याद्वाद, प्रमाण, नय, निक्षेपादि हैं उतना ही वाद-विवाद है, तथा जितना वाद-विवाद है उतना ही मिथ्यात्व है और जितना मिथ्यात्व है उतना ही संसार है। इसलिये -

(चोपाई)

`सद्गुरु कहै सहजका धंधा, वाद-विवाद करै सो अंधा।'

और सुनो, नाटक समयसारमें भी कहा है -

(सवैया इकतीसा)

`असंख्यात लोक परमाण जो मिथ्यातभाव,
ते ही व्यवहारभाव केवली उकत है।
जिनके मिथ्यात गयो सम्यकदरश भयो,
ते नियतलीन व्यवहारसे मुकत है।।'

और भी

`निश्चय व्यवहारमें जगत भरमायो है।'

भावार्थ :- वह स्वस्वरूप सम्यक् स्वानुभवगम्य ज्ञानमयी स्वभाववस्तु तो स्वभावसे ही जैसी है वैसी है। देखो, चित्र हस्तांगुलि सूचक है-पूर्वपक्षी जिस वस्तुको पश्चिम तरफ मानता है, उसी प्रकार पश्चिमपक्षी उसी वस्तुको पूर्वकी तरफ मानता है। वस्तु तो न पूर्वकी तरफ है और न पश्चिमकी तरफ है। निरर्थक ही पूर्वपक्षी और पश्चिमपक्षी परस्पर विरोध प्रगट करते हैं, क्योंकि वस्तु स्वस्वभावमें स्वभावसे ही जैसीकी तैसी, जहाँ की तहाँ, चलाचल रहित है। इस स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुका जिसको पूर्ण अनुभव लेना हो उसने प्रथम आपको आपके द्वारा व गुरु- उपदेशसे ऐसा कल्प लेना, ऐसा आपको मान लेना कि स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी सूर्य स्वभाववस्तु अपनी आपमें आप स्वभावसे ही जैसी है वैसी है।

जिस स्वभावमयी वस्तुमें मूलसे ही तर्कका अभाव है वही मैं हूं, इस प्रकार अपने आपको आपके द्वारा व गुरुवचन द्वारा कल्प लेना। तत्पश्चात् चित्र हस्तांगुलि मौन सहित एकान्त स्थानमें बैठकर देखा ही करो, देखते-देखते देखता ही रहेगा। नाचनेमें मजा नहीं, नृत्य-नाच देखनेमें बड़ा मजा है।

(दोहा)

सम्यग्ज्ञान स्वभावसे सदा भिन्न अज्ञान।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, प्रेमचंद्र तूं मान।।
चित्रांगुलिको देखके, मनमें करो विचार।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, पावेगा भवपार।।

जैसे सूर्यका प्रकाश पृथ्वी, जल, अग्नि आदि कर्ता, कर्म, क्रिया तथा शुभ-अशुभ वस्तुके ऊपर है वैसे ही चित्र हस्तांगुलिके ऊपर स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यका ज्ञानगुण प्रकाश है। परन्तु चित्र हस्तांगुलिसे तथा चित्र हस्तांगुलिका भाव क्रिया-कर्म आदि जितना कुछ शुभाशुभ व्यवहार है उससे ज्ञानगुण न तन्मयी है, न तन्मयी होगा और न तन्मयी हुआ था। तथा ज्ञानगुण और जिस गुणीका ज्ञानगुण है वह भी चित्र हस्तांगुलिके साथ तथा चित्र हस्तांगुलिका भाव क्रिया-कर्म आदि जितना जितना कुछ शुभाशुभ व्यवहार है उससे न तन्मयी था, न होगा और न है।

विशेष और समझना, सुनो ! जैसे एक मोटा चौड़ा लम्बा स्वच्छ स्वभावमयी दर्पण है, उसके सन्मुख अनेक प्रकारका काला, पीला,

लाल, हरा, सफेद आदि रंगका वांका टेढ़ा लंबा चौड़ा गोल तिरछा आदि आकार है। उसकी प्रतिच्छाया-प्रतिबिम्ब उस स्वच्छ दर्पणमें तन्मयीवत् दीखती है, वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वच्छ स्वभावदर्पणमें यह मनुष्य-देव-तिर्यंच-नारकीका, स्त्री-पुरुष-नपुंसकका, तन-मन-धन-वचनका तथा लोकालोक आदिका शुभाशुभ जितना व्यवहार है उसकी प्रतिच्छाया-प्रतिबिम्ब उस स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वच्छ स्वभावदर्पणमें तन्मयीवत् दीखता है, मानो कीलित कर रखा है, मानो चित्रकारने लिख रखा है, मानो शिल्पकारने टांकीसे कोर रखा है। **भावार्थ :-** स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वच्छ स्वभावमयीदर्पण है वह भी स्वभावसे ही स्वभावमें जैसा है वैसा है। तथा तन-मन-धन-वचनादिक और इस तन-मन-धन-वचनादिकका शुभाशुभ व्यवहार तथा उसकी प्रतिच्छाया-प्रतिबिम्ब स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वच्छ स्वभावदपर्णमें तन्मयीवत् दीखता है, वह भी अज्ञानमयी स्वभावसे ही स्वभावमें जैसा है वैसा है। पूर्वोक्त स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञामयी स्वच्छ स्वभावदपर्णके साक्षात् स्वानुभवकी प्राप्तकी प्राप्ति श्री सद्गुरुके उपदेश बिना तथा काललब्धि पाचक हुए बिना नहीं होती अर्थात् स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानका लाभ नहीं होता।

सुनो ! जैसे सूर्यमें प्रकाश तन्मयी है वैसे ही जिस वस्तुमें ज्ञानगुण तन्मयी है उसी वस्तुको मुनि ऋषि आचार्य गणधरादि जीव कहते हैं। सो निश्चयदृष्टिमें (वह) जीवराशि जीवमयी है। सुनो, निश्चयदृष्टिमें जीवराशिका परस्पर जातिभेद नहीं, लक्ष्य-लक्षणभेद नहीं, नामभेद नहीं, स्वस्वरूपभेद नहीं, अर्थात् गुण-गुणी अभेद है अतः जीवराशिमें परस्पर गुण-गुणी भेद नहीं। जो कथंचित् पर अपेक्षासे भेद है सो वह परमयी ही है। जो अनादि सिद्धान्त वार्तावचन है वह शब्दके साथ तन्मयी है।

अब हे मतवाले हो ! हे जैनमतवाले हो ! हे विष्णुमतवाले हो ! हे शिवमतवाले हो ! हे बौद्धमतवाले हो आदि षट्मतवाले हो ! जैसे छह जन्मान्ध हाथीका यथावत् स्वरूप न जानकर परस्पर विवाद-विरोध करते-करते मर गये वैसे ही हे षट्मतवाले हो ! छह जन्मान्धोंके समान बिना समझे परस्पर विवाद-वैर-विरोध मत करो। 'शास्त्रदृष्ट्या गुरुवाक्यं तृतीयं चाआत्मनिश्चयम्' अर्थात् शास्त्रमें लिखी होवे, वहीकी वही गुरुमुखसे वाणी खिरती होवे तथा वही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावमें-अचल प्रमाणमें आती है उसे हे मतवाले मित्रो ! समझो।

(दोहा)

समझो समझो समझमें, समझो निश्चय सार।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, तब पावो भवपार।।

अब स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यवस्तु है उसके साथ तन्मय होकर उसका स्वानुभव इस प्रकार लेना - एक नयसे तो जीव दुष्ट अर्थात् द्वेषी है तथा दूसरे नयसे दुष्ट नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १। एक नयसे कर्ता है तथा दूसरे नयसे कर्ता नहीं है, इस प्रकार चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं २। एक नयसे भोक्ता है तथा दूसरे नयसे भोक्ता नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं ३। एक नयसे जीव है तथा दूसरे नयसे जीव नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं ४। एक नयसे सूक्ष्म है

तथा दूसरे नयसे सूक्ष्म नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं ५। एक नयसे हेतु है तथा दूसरे नयसे हेतु नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं ६। एक नयसे कार्य है तथा दूसरे नयसे कार्य नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं ७। एक नयसे भाव है तथा दूसरे नयसे अभाव है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षापत हैं ८। एक नयसे एक है तथा दूसरे नयसे अनेक है, इस प्रकार इस चैतन्यमैं दो नयोंके दो पक्षपात है ९। एक नयसे सान्त अर्थात् अन्तसहित है तथा दूसरे नयसे सान्त नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १०। एक नयसे नित्य है तथा दूसरे नयसे अनित्य है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं ११। एक नयसे वाच्य अर्थात् वचन द्वारा कहनेमें आता है तथा दूसरे नयसे वचनगोचर नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १२। एक नयसे नानारूप है तथा दूसरे नयसे नानारूप नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १३। एक नयसे चेत्य अर्थात् जानने योग्य है तथा दूसरे नयसे चिन्तवनयोग्य नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १४। एक नयसे दृश्य अर्थात् देखने योग्य है तथा दूसरे नयसे देखनेमें नहीं आवे ऐसा है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १५। एक नयसे वेद्य अर्थात् वेदने योग्य है तथा दूसरे नयसे वेदनेमें नहीं आवे ऐसा है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १६। एक नयसे भाव अर्थात् वर्तमान प्रत्यक्ष है तथा दूसरे नयसे वैसा नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्यमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं १७। इस प्रकार इस चैतन्यमें ये सब पक्षपात हैं। परन्तु तत्त्ववेदी है वह स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यवस्तुका

यथार्थ स्वानुभव करनेवाला है, उसके चिन्मात्र भाव है, वह चिन्मात्र ही है। पक्षपातके साथ सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयी न है, न होवेगा, न हुआ था। अर्थात् जैसे सूर्यसे अन्धकार भिन्न है वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य है, वह विधि-निषेध, अस्ति-नास्ति, राग-द्वेष, वैर-विरोध-पक्षपात, द्वैत- अद्वैतसे व संकल्प-विकल्पसे भिन्न है। जैसे सूर्यके प्रकाशमें एक लघु है तो दूसरा स्थूल है, एक मूर्ख है तो दूसरा पण्डित है, एक भोगी है तो दूसरा योगी है, एक लेता है तो दूसरा देता है, एक मरता है तो दूसरा जन्मता है, एक भला है तो दूसरा बुरा है, एक मौनी है तो दूसरा वक्ता है, एक अन्ध है तो दूसरा देखता है, एक पापी है तो दूसरा पुण्यवान् है, एक उत्तम है तो दूसरा नीच है, एक कर्ता है तो दूसरा अकर्ता है, एक चल है तो दूसरा अचल है, एक क्रोधी है तो दूसरा क्षमावान है, एक धर्मी है तो दूसरा अधर्मी है, कोई किसीसे नगीच है तो कोई किसीसे भिन्न है, कोई बंधा है तो दूसरा मुक्त है, खुला है, कोई उलटा है तो दूसरा सुलटा है, इत्यादिक जैसे इस सूर्यके प्रकाशमें सर्व हैं वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यमें पूर्वोक्त पक्षपातका विवाद परस्पर है अर्थात् पूर्वोक्त पक्षपात है सो पक्षपातसे अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मयी है, परन्तु जैसे सूर्यसे अन्धकार भिन्न है वैसे ही पूर्वोक्त पक्षपात है वह स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यसे भिन्न है।

प्रथम गुरु-उपदेशसे सर्वचित्र हस्तांगुलिके बीचमें है उसे अचल बनकर उसके बाद परस्पर चित्र हस्तांगुलि सूचक है-कहता है-मानता है उसे समझना और समझ द्वारा अपना आपमें आपमयी स्वसम्यग्ज्ञानमें सम्भवे वह तो स्वसम्यग्ज्ञानानुभवसे तन्मय है, शेष न सम्भवे वह अतन्मय है। स्वस्वभावमें सम्भवे वह तो अपनी है तथा

स्वस्वभावमें न सम्भवे वह अपनी कदाचित् प्रकार भी नहीं है, न होवेगी, न हुई थी।

अब अवगाढ़ताके लिये चेत (सावधानी, ज्ञान) करो। पीताम्बरदासजी आदि जितने मुमुक्षु मेरे प्यारे हैं, मेरे वचनोपदेश द्वारा स्वस्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानानुभवरूप प्राप्तकी प्राप्ति लेने योग्य ले चुके हो तो इस सम्यग्ज्ञानदीपिका पुस्तकको आदिसे अन्तपर्यन्त दो महीनेमें एक बार पढ़ लिया करो, जब तक देहादिकका भास होता है तब तक। यह मेरा लिखना सद्भूत व्यवहारगर्भित समझना।।श्री।। श्री।।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

ज्ञानावरणीयकर्म विवरण

(दोहा)

१	मति	ज्ञान
२	श्रुत	ज्ञान
३	अवधि	ज्ञान
४	मनःपर्यय	ज्ञान
५	केवल	ज्ञान
६	कुमति	ज्ञान
७	कुश्रुत	ज्ञान
८	कुअवधि	ज्ञान

ज्ञानावर्णी घातके, हुवो ज्ञानको ज्ञान।
धर्मदास क्षुल्लक कहे जिन आगम परमान।।

जैसे देवमूर्तिके आड़ा मलमलके वस्त्रका परदा होवे तब दूसरोंके देवमूर्ति स्पष्ट दिखाई देती नहीं, वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानके एक परदाके समान कर्म है, वह आड़ा आ जाय तब निरन्तर दृष्टि रहितको अन्तरज्ञान दीखता नहीं। अथवा जैसे सूर्यके आड़ा बादल आ जावे तो दूसरेको सूर्य स्पष्ट दीखता नहीं, वैसे ही केवल ज्ञानमयी सूर्यके पटलके समान कर्म आ जावे तब ज्ञान रहितको दीखता नहीं। जैसे सूर्यके आड़ा वस्त्रके समान अनेक बादलो आ जावें तो भी सूर्य है वह तो सूर्य ही है। यदि बादल रहित सूर्य होवे तो भी सूर्य तो सूर्य ही है। सूर्यके आड़ा बादल आ जावे तब सूर्यको सूर्य ही नहीं मानता है, नहीं समझता है, नहीं कहता है वह भी मिथ्यात्वी है; तथा सूर्यके आड़ा बादल

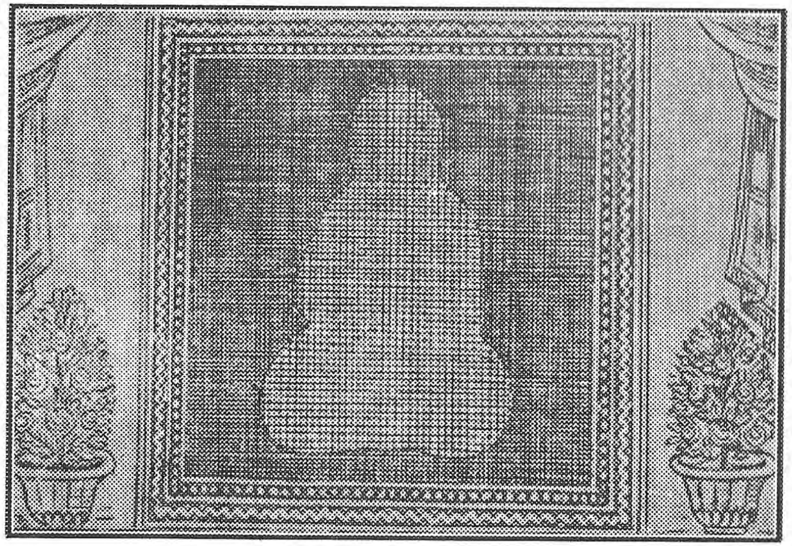

ज्ञानावरणीय कर्मका चित्र

पृष्ठ - १९

आ जावे तब जो कोई बादलको ही सूर्य समझता है, मानता है, कहता है वह भी मिथ्यात्वी है। इस प्रकार देवमूर्तिके आड़ा पट तथा सूर्यके आड़ा बादल इन दो दृष्टान्तों द्वारा होकर समझना।

तथा स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुके परदाके समान एक कर्म है जो ज्ञान रहित है, वह आड़ा आ जावे तो भी सम्यग्ज्ञानमयी वस्तु है, वहकी वही है, वह है; तथा जड़ अज्ञानमयी परदाके समान कर्म है, उससे रहित हो तब भी वह स्वस्वरूपी स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु जैसीकी तैसी स्वभावमें है; अर्थात् जैसे सूर्यके और अमावस्याकी मध्यरात्रिके परस्पर अत्यन्त भेद है वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावके और ज्ञानावरणीयकर्मके परस्पर अत्यन्त भेद है; क्योंकि कर्म अज्ञान है और वह ज्ञान है, कर्म अचेतन है वह चेतन है, कर्म अजीव है वह जीव है, ज्ञान कर्मको जानता है पर कर्म ज्ञानको जानता नहीं, ज्ञान और कर्म ये दो वस्तु हैं और इन दोनोंका लक्ष्य- लक्षण एक नहीं। जैसे सूर्य और प्रकाश एक हैं वैसे ज्ञान और अज्ञान न कभी एक हुए, न एक हैं और न एक होंगे। ज्ञान और अज्ञानका मेल है वह ऐसा नहीं है कि जैसा फूल-सुगन्धका, तिल-तेलका तथा दूध-घीका मेल है। ज्ञान और अज्ञानका जो अन्तरभेद है वह ऐसा है कि जैसा सूर्यका और अन्धकारका अन्तरभेद है। यह अनादि वार्ता है। श्रीगुरु बिना इसके सारका लाभ होता नहीं।

जैसे सूर्यमें प्रकाशगुण सूर्यके स्वभावसे ही है, वैसे ही जिस वस्तुमें केवल ज्ञानादि ज्ञानके साथ तन्मयी गुण है, वह केवल ज्ञान है। अर्थात् जिसमें केवल ज्ञानादि गुण नहीं है वह अज्ञान वस्तु है। तथा जिसमें ज्ञानगुण है ऐसा केवल ज्ञान है। वह पर अपेक्षासे आठ प्रकार है। परन्तु जैसे सूर्य और प्रकाश एक तन्मय है वैसे

केवल ज्ञानवस्तु अपने गुण स्वभाव लक्षणको छोड़कर जड़ अज्ञानमयी वस्तुके साथ कभी भी न एक तन्मयी हुआ है, न होगा, न होता है। अतः है सज्जन ! आठ प्रकारके ज्ञानावरणीय कर्मका विचार करके ज्ञानकी और कर्मकी तन्मयता है कि नहीं है उसका विचार कर।

(दोहा)

प्रकाश - सूरज एक है, जड़ - चेतन नहिं एक।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, मनमें धार विवेक।।

इस प्रकार चित्रयंत्र सहित ज्ञानावरणीय कर्म विवरण समाप्त हुआ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

दर्शनावरणीय कर्म विवरण

(सोरठा)

ज्ञानभानु जिनराज, सर्व जगतके ऊपरे।
धर्मदास कहै सार, सो ही सुखको काज है।।

जैसे गढ़में जाकर देखनेकी शक्ति तो एक पुरुषमें है परन्तु द्वारपाल भीतर नहीं जाने देता, वैसे ही जैसे सूर्यमें प्रकाश है वैसे जीवमें देखने-जाननेका गुण स्वभावसे ही है परन्तु दर्शनावरणीय जातिका द्वारपालके समान एक कर्म है वह देखने नहीं देता।

यहाँ ऐसा अनुभव लेना कि द्वारपाल उसको देखनेके लिये नहीं जाने देता और कहता है कि-गढ़के भीतर क्या देखनेके लिये जाते हो ?

उत्तर :- जिसमें देखने-जाननेका गुण है उसीको देखनेके लिये मैं भीतर जाता हूं। तब द्वारपाल उसे रोकता है और कहता है कि मत आओ। जैसा तुझमें देखने-जाननेका गुण है वैसा ही उसमें है। सूर्य सूर्यको देखनेका उद्योग-इच्छा करता है वह व्यर्थ है।

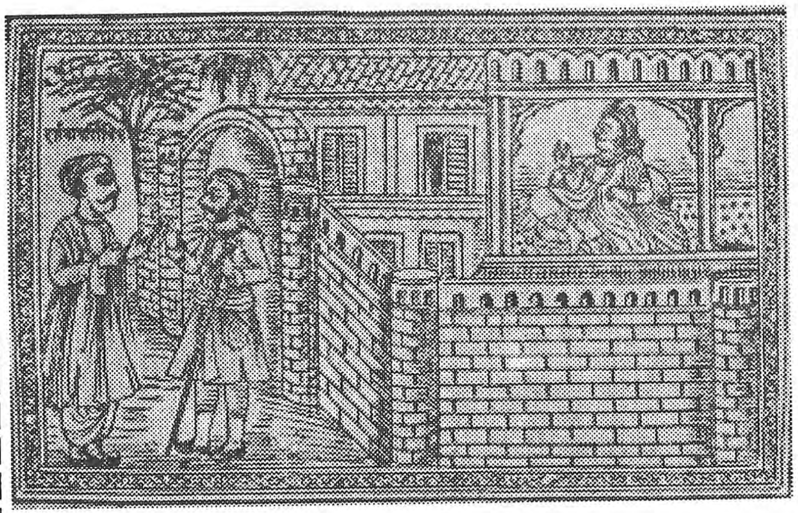

दर्शनावरणीय कर्मका चित्र

पृष्ठ - २३

जैसे एक अग्नि भीतर राखमें दबी है और दूसरी अग्नि व्यक्त है वैसे ही तुझमें और तूं जिसको देखनेके लिये भीतर जाता है उसमें अन्तर समझना। राखकी अपेक्षावत् भेद समझना; स्वस्वरूपमें अभेद है। जैसा भीतर गढ़में है वैसा ही तूं है।

प्रश्न :- जैसा भीतर गढ़में है वैसा ही मैं कैसे हूं ?

उत्तर :- अब द्वारपाल दृष्टान्त द्वारा उत्तर देता है। सुन ! तूं इस द्वार भवनमें तेरे स्वमुखसे उच्च स्वरसे कह कि 'तूं ही।' तब द्वारपालके कथनानुसार उसी प्रकार उच्च स्वरसे उसने आवाज करी कि 'तूं ही।'-तब प्रतिआवाज वैसी ही आई। तब उसने निश्चय समझ लिया कि जैसा देखनेका गुण भीतर गढ़में है वैसा ही देखनेका गुण मुझमें है; अब मैं किसको देखनेके लिये भीतर गढ़में जाऊं ? अर्थात् मुझमें देखने-जाननेका गुण स्वभावसे ही है, अब मैं किसको देखूं और किसको न देखूं ?

(दोहा)

दर्शनावरणी कर्मको, प्रगट बतायो भेद।
तो भी गुरु बिन ना मिले, बहुत करो तुम खेद।।

जैसे सूर्यमें प्रकाश गुण है वैसे जिस वस्तुमें देखनेका गुण है वही वस्तु दर्शन है। उस दर्शनके परकी अपेक्षासे चार भेद हैं तो भी सम्यक् दर्शन तो स्वभावको उल्लंघ कर चक्षु-अचक्षु होता नहीं। जैसे जन्मान्ध अपने और परके शरीरके देखता-जानता नहीं वैसे ही अज्ञान वस्तु है वह स्व-परको जानती-देखती नहीं। तथा जैसे सड़कके रास्ताके एक तरफ एक द्वारका मकान-स्थान है, उसके

भीतर एक स्थान अर्थात् मकानके भीतर मकान है, वहाँ अन्धकारमें एक पुरुष बैठा हुआ उस मकानके द्वारसे होकर बाहर रास्तामें जो आता-जाता है उसको भी जानता है और अपनेको भी जानता है, वैसे ही दर्शन है वह स्व-परको देखता है। जैसे सूर्यसे प्रकाश भिन्न नहीं वैसे दर्शनसे देखना-जानना कभी भी भिन्न नहीं। सबको देखता है वह दर्शन है।

इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म विवरण समाप्त हुआ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

वेदनीय कर्म विवरण

(दोहा)

विषयसुख सो दुःख है, निश्चयनय परमाण।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, समझ देख मतिमान।।

शहदसे लपेटी हुई तलवारकी धारको (कोई) पुरुष जिह्वासे चाटता है उसे कुछ तो मिष्ट स्वादका भास होता है और विशेषरूपसे जिह्वाखण्डनके दुःखका भास होता है; वैसे ही वेदनीय कर्म दो प्रकारका है-साता और असाता। यहाँ स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुका अनुभव इस प्रकार लेना-जैसे सूर्यप्रकाशमें व आकाशमें कोई सुखी तथा कोई दुःखी है उनका सुख व दुःख आकाशसे व सूर्य और सूर्यप्रकाशसे एक तन्मयी होकर लगता नहीं, वैसे ही संसारका सुख-दुःख और साता-असाता कर्म उस स्वस्वरूपी स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञान सूर्यको पहुँचता नहीं, ज्ञानमयी सूर्यको लगता नहीं। अर्थात् सम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके और इन साता- असाता वेदनीय कर्मके परस्पर सूर्य और अन्धकारके समान अन्तरभेद परस्परके स्वभावसे ही है। इन दोनोंमें सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयता न है,

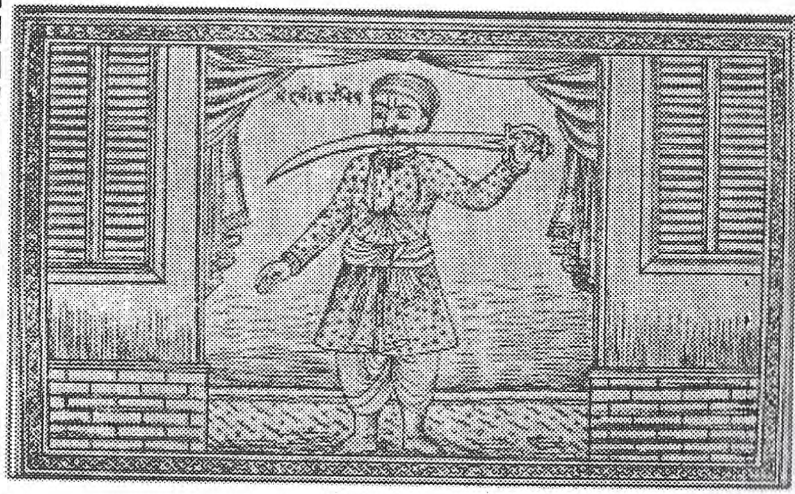

वेदनीय कर्मका चित्र

पृष्ठ - २७

न होगी, न हुई थी। स्यात् जैसे दर्पणमें जल-अग्निकी प्रतिच्छाया भासती है वैसे ही स्यात् केवल ज्ञानमयी दर्पणमें इस साता-असाता वेदनीयकर्मकी भाववासना भासती है, तो भी साता- असाता वेदनीय कर्मसे वह केवल ज्ञानमयी दर्पण तन्मयी हुआ नहीं, होगा नहीं और न है। (इससे) स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावका अभाव न समझना, न मानना और न कहना।

(सवैया इकतीसा)

जैसे कोऊ चंडाली जुगलपुत्र जणे तिनि
एक दियो ब्राह्मणकूं एक राख लियो है।
ब्राह्मणके गयो तिन मद्य-मांस त्याग कियो.

जो ब्राह्मणके घर गया उसने तो मदिरा-मांसका त्याग कर दिया और उसे उत्तम ब्राह्मणपनाका अभिमान आ गया। तथा दूसरा चांडालिनीके घरमें ही रहा आया वह मदिरा-मांसादिके ग्रहण करनेके निमित्तसे हीनपनाके कारण अपनेको नीच मानने लगा। यहाँ विचार कर देखें तो वे दोनों-उत्तम और हीन-एक चांडालिनीके पेटमेंसे उत्पन्न हुये हैं, वैसे ही एक कर्म-क्षेत्रमेंसे वेदनीय कर्मके साता- असाता ये दो पुत्र समझना। निश्चयदृष्टिसे देखो तो सुनार सुवर्णका आभूषण करे तो भी सुनार है और स्यात् वही सुनार ताम्र-लोहका आभूषण बनावे तो भी जैसाका तैसा सुनार है वह सुनार ही है। तथा जैसे सुनार शुभ-अशुभ आभूषण आदि कर्म करता है सो शुभ-अशुभ आभूषण आदि कर्मसे तन्मयी होकर नहीं करता है वैसे ही सम्यग्दृष्टि (जीव)

शुभाशुभ कर्म करता है, परन्तु शुभाशुभ कर्मसे तन्मयी होकर नहीं करता है। इसलिये गुरु-उपदेशसे सम्यग्दृष्टि होना योग्य है।

(दोहा)

एक वेदनीय कर्मका, भेद दोय परकार।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, सातासात विचार।।

हे जीव ! यह साता-असाता वेदनीय कर्म तेरा है तब तो तूं ही उसका अधिष्ठाता है, और यदि साता-असाता वेदनीय कर्म तेरा नहीं है तो फिर क्या फिक्र है ?

तूं न किसीका, कोई न तेरा।
तेरा तूं ही है निरधारा।।

इस प्रकार वेदनीय कर्म विवरण समाप्त हुआ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

मोहनीय कर्म विवरण

(दोहा)

पर स्वभाव पररूपके, माने अपनो आप।
ये विकल्प सब छोड़के, नये सिद्धगुण थाप।।

जैसे मदिराका पीनेवाला आपको और परको जानता नहीं, मदिरावश यद्वा तद्वा वचन बोलता है वैसे ही मोहनीय कर्मवश जीव अपने आपमें आपमयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावको जानता नहीं और परको ऐसा मानता है कि 'ये तन- मन-धन-वचनादिक हैं, वही मैं हूं,' यही मोह है। अब निश्चय मोहका वचन कहता हूं, सुनो। 'ये तन-मन-धन-वचनादिक हैं वही मैं हूं' एक तो यह विकल्प तथा दूसरा यह विकल्प कि 'ये तन-मन-धन-वचनादिक हैं वह मैं नहीं' अर्थात् 'ये हैं वही मैं हूं' तथा 'ये हैं वह मैं नहीं हूं' ये दोनों ही विकल्प हैं वही निश्चय मोह है। इन दोनों विकल्पोंको और स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको अग्नि-उष्णतावत् सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयी मानता है, जानता है, कहता है वह मोही मिथ्यादृष्टि है तथा इससे भिन्न है वह सम्यग्दृष्टि है। मैं, तूं, यह और वह ये चार तथा इन चारका जितना खेल-विलास

मोहनीय कर्मका चित्र

पृष्ठ - ३१

है उस सबको द्रव्यकर्म-भावकर्म- नोकर्मसे तन्मय-एकमय समझना। हाय ! हाय ! ! मोहनीय कर्मवश जिसको भला मानता है। उसीको बुरा मानता है, जिसे इष्ट मानता है उसीको अनिष्ट मानता है। मोही जीवको यह निश्चय नहीं कि जिसमें ज्ञानगुण है वही मैं हूं और यदि निश्चय है तो मात्र कहने पुरता, स्वस्वरूप स्वानुभव नहीं; क्योंकि तन-मन-धन-वचन आदि अजीव वस्तुके और ज्ञानगुणमयी जीवके सूर्य-अन्धकारके समान अन्तर-अभेद परस्पर स्वभावसे ही है- यह भेदविज्ञान जिसके अन्तःकरणमें गुरु-उपदेशसे आकाशवत् अचल तिष्ठता है वह-

(अडिल्ल छंद)

कहै विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूं,
अपने रसमें भर्यो आपनी टेक हूं।
मोहकरम मम नाहिं नाहिं भ्रमकूप है,
शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।।

जैसे सूर्यमें प्रकाश गुण है वैसे है सज्जन, हे प्रेमी ! तुझमें ज्ञान - गुण है। तूं निश्चय समझ कि 'तूं ज्ञान है' और 'ये मोहादिक अज्ञान है।' **भावार्थ :-** ज्ञान और अज्ञानको सूर्य-प्रकाशवत् एक ही मानता है, समझता है, कहता है; उस मिथ्यादृष्टिको ब्रह्मज्ञानका उपदेश देना वृथा है।

प्रश्न :- मोह किसको कहते हैं ?

उत्तर :- नदीके तट एक पुरुष बहते हुए पानीको एकाग्रमन होकर

देखता देखता ऐसा समझने लगा कि मैं भी बहा जाता हूं; इसीका नाम मोह है। तथा दस पुरुषोंने परस्पर गणना कर नदी पार उतरनेकी इच्छा की, उनमेंसे एक पुरुषने गणना की कि 'अपने घरसे दस आये थे, नौ ही रह गये,' स्वयंको दशवाँ न समझता है, न मानता है, न कहता है; इसीका नाम मोह है। अर्थात् पुद्गलादिकको और सम्यग्ज्ञानमयी स्वयंको एक ही समझता है; वही मोह है।

इस प्रकार मोहनीय कर्म विवरण समाप्त हुआ।

आयु कर्म विवरण

(चोपाई)

खंडन मंडन आयु नाश, भये सिद्ध परमालय पास।
अचलायू सम अचल अभेद, लीन भेय निज रूप अखेद।।

जैसे कोई चोर बेड़ी-खोड़ासे बंधा है वैसे ही जीव आयुकर्मवश मनुष्यायु-देवायु-नरकायु-तिर्यंचायुसे जहाँ तहाँ बंध जाता है। आयु पूर्ण हुए बिना एक आयुको छोड़कर दूसरी आयुमें नहीं जाता। अब अचल-आयुके लिये स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वाभाववस्तुका स्वानुभव ऐसे लेना :- जैसे घटके भीतर घटाकाश बंधा है, मठके भीतर मठाकाश बंधा है इत्यादि, वैसे ही देहरूपी घटमें आकाशवत् एक ज्ञानगुणमयी जीव बंधा है। विचार करो, जैसे घटके भीतर आकाश है वह महाकाशसे भिन्न नहीं, वैसे ही देहरूपी घटके भीतर ज्ञान है वह केवल ज्ञानसे भिन्न नहीं है। हे ज्ञान ! तूं अपनेको केवल ज्ञानसे भिन्न मत समझ, मत मान, क्योंकि केवल ज्ञानसे भिन्न वस्तु है वह तो अज्ञान वस्तु है। हे सज्जन ! तूं ज्ञानवस्तु मूलसे ही स्वभावसे ही है, फिर तूं स्वयंको अज्ञान कैसे मानता है ? हे ज्ञान !

आयु कर्मका चित्र

पृष्ठ - ३५

व्यवहारनयसे तूं मनुष्यायु- देवायु-नरकायु-तिर्यंचायुमें बंधा है। निश्चयनयसे हे केवल ज्ञानस्वरूपी ! सुन ! पुद्गल मूर्तिक साकार वस्तु है, तूं केवल ज्ञानमयी निराकार अमूर्तिक वस्तु स्वभावसे ही है। बड़े आश्चर्यकी वार्ता है कि मूर्तिक साकार वस्तु है, वह अमूर्तिक निराकार वस्तु ज्ञानमयीको बन्धमें कैसे डालता है ? ऐसी असम्भव वार्ता कैसे सम्भव है ? हे ज्ञान ! भरममें मत डूबो, देखने-जाननेका गुण तुझमें तन्मयी है। तूं बंधको, बंधे हुएको और बांधनेके द्रव्यक्षेत्र-काल-भाव आदिको सहज ही जानता-देखता है। जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व पृथ्वीके ऊपर सहजपने ही है वैसे हे ज्ञान ! तूं बंधे हुए बंधको सहजपने ही जानता है। व्यवहारनयवश तूं बंधा है, वह व्यवहार ऐसा है कि जैसे घृतकुम्भ व ओखली, सड़क चलती है, रास्ता लुटता है, अग्नि जलती है। इन पांच दृष्टान्तों द्वारा सर्व व्यवहारको समझो। निश्चय व्यवहारसे सर्वथाप्रकार भिन्न है। वही परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी ज्ञानघन है। देखो ! जैसे सूर्यके भीतर अंधकार नहीं, वैसे ही सम्यग्ज्ञान स्वभावमें शुभाशुभ आयु नहीं। मनुष्यायु-देवायु-तिर्यंचायु और नरकायु ये चार आयु हैं उनको केवल ज्ञान जानता है। अचल-अखण्ड आयु पंचम आयु है। कुछ और समझो-जैसे कोई पैरमें लोहेकी बेड़ीसे बंधा है वह भी दुःखी है, तथा कोई पैरमें सुवर्णकी बेड़ीसे बंधा है वह भी दुःखी है, वैसे ही दान-पूजा-व्रत-शील-जप-तप आदि शुभभाव- शुभक्रिया-शुभकर्म आदि शुभ बन्ध है वह भी सुवर्णकी बेड़ीके समान दुःखका कारण है तथा पाप-अपराध-काम-कुशील आदि अशुभभाव- अशुभक्रिया-अशुभकर्म आदि अशुभ बन्ध है वह भी लोहेकी बेड़ीके समान

दुःखका कारण है। इस शुभा शुभसे सर्वथाप्रकार भिन्न होना निश्चय है। पर सद्‌गुरुके उपदेश बिना प्राप्तकी प्राप्ति होती नहीं।

प्रश्न :- क्या प्राप्तकी अप्राप्ति सम्भव है ?

उत्तर :- दहीमेंसे घी निकलनेके बाद दहीमें नहीं मिलता है इसी प्रकार यहाँ समझना।

इस प्रकार आयु कर्म विवरण समाप्त हुआ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

नाम कर्म विवरण

(चोपाई)

तुमरो नाम नहीं है स्वामी, नामकर्म तुमसे अलगामी।
शुद्ध व्यवहारमें नाम अनन्ता, व्यक्तरूप श्रीजिन अरिहंता।।

(दोहा)

जिनपद नहीं शरीरकौ, जिनपद चेतनमांहि।
जिनवर्णन कछु और है, यह जिनवर्णन नाहिं।।

जैसे चित्रकार नाना प्रकारके आकारके नाम लिखता है, करता है, वहाँ जितना काला-पीला-लाल-हरा-सफेद रंगका चित्र-आकार दीखता है वह (सब) पुद्‌गलका है। सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुका नाम क्या ? इसी वस्तुका नाम व्यवहारनयसे जीव है। उसमें भी परसंगसे अनेक नाम हैं। जैसे मिट्टीके घटको घीके संगसे व्यवहारीजन कहते हैं-'वह घृतकुम्भ लाओ।' अथवा समुदाय वस्तुका नाम लश्कर है। जितना कुछ वचनसे कहा जाता है वह सब नाम है। नाम

नाम कर्मका चित्र

पृष्ठ - ३९

देशमें एक ही नाम है। यहाँ स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुका स्वानुभव ऐसे लेना-जैसे सूर्यमें प्रकाश आदि गुण सूर्यके स्वभावसे ही हैं वैसे कोई वस्तु ऐसी है जिसमें स्व-परको देखना-जानना यह गुण स्वभावसे ही है। विचार करो ! सर्व नाम अनामको देखता-जानता है उसका नाम क्या है ? अथवा सर्व नाम अनामको कहता है उसका नाम क्या है ? 'वचन' और 'मौन' ये भी दो नाम हैं। अथवा एक ही वस्तु अपने स्वभावगुणमयी स्वस्वभावमें जैसी है वैसी अचल विराजती है, उससे तन्मयी गुप्त व प्रगट (उसके) अनेक नाम हैं। जैसे सुवर्ण अपना स्वभाव गुणादिक अपने आपमें लिये हुए अचल स्थित है, उसीमें कड़ा, मुद्रिका, मुहर आदि आभूषादिक अनेक नाम सुवर्णमें तन्मयी हैं। नाम है, वह भी अपेक्षासे है। जैसे पिताकी अपेक्षा पुत्र नाम है वैसे ही पुत्रकी अपेक्षा पिता नाम है। वैसे ही जीवकी अपेक्षा अजीव नाम है तथा अजीवकी अपेक्षा जीव नाम है। इसीप्रकार ज्ञानकी अपेक्षा अज्ञान नाम है तथा अज्ञानकी अपेक्षा ज्ञान नाम है। हा ! हा !! हा !!! धन्य धन्य धन्य ! सर्व पक्षापक्ष रहित ज्ञानगुणसम्पन्न स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु स्वभावसे ही जैसीकी तैसी, जैसी है वैसी है, उसे अन्तरदृष्टि व सम्यग्ज्ञान दृष्टिसे देखिए तो न नाम है और न अनाम है। अर्थात् वस्तु अपने स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य ज्ञानस्वभावमें जैसी है वैसी है, नाम कहो अथवा मत कहो। नाम और जन्म - मरण तो यह पांच प्रकारका शरीर है उसका है, (ऐसा) श्री पद्मनन्दी पच्चीसी ग्रन्थमें श्री पद्मनन्दी मुनि कह गये हैं।

(दोहा)

नामकर्मकी भावना, भावे सुरत संभाल।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, मुक्ति होय तत्काल।।

अपनो आपो देखके, होय आपकौ आप।
होय निचिंत तिष्ठ्यो रहे, किसका करना जाप।।

नामकर्म कर्तारकौ, नाम नहीं सुन सार।
जो कदापि यो नाम है, ताकौ कर्ता निर्धार।।

इस प्रकार नाम कर्म विवरण समाप्त हुआ।

❃ ❃ ❃ ❃ ❃

गोत्र कर्म विवरण

(दोहा)

गोत्रादिक सब कर्मको, त्याग भये जिनराज।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, वंदन सुखके काज।।

जैसे कुम्हार छोटा-बड़ा माटीका बर्तन करता है वैसे स्वस्वरूपज्ञान रहित कोई जीव है वह नीचगोत्र-उच्चगोत्र कर्मको करता है, इसीसे नीचगोत्र-उच्चगोत्र है। यहाँ ऐसा समझना कि माता पक्षको तो जाति कहते हैं और पिता पक्षको कुल कहते हैं। जाति और गोत्र ये दो भेद कथनमात्र हैं, अभेद वस्तुमें ये दो भेद जलतरंगवत् तन्मयी हैं। जैसे आमके वृक्षमें आम ही लगता है, वहाँ विचार करो ! आमकी जाति भी आम ही है और आमका कुल है वह भी आम ही है। जैसे जलकी जाति मिश्री, फिटकरी, नमक और नौसार आदि है, क्योंकि इनको पानीमें मिलाने पर ये (पानीमें) मिल जाते हैं, अर्थात् (जिसमें) मिल जाय वह निश्चय जाति है; वैसे ही नीचगोत्र-उच्चगोत्रके ही नीच-उच्चगोत्र हैं। यहाँ स्वस्वभाव स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुका स्वभाव ऐसा लेना कि-जैसे कुम्हार मिट्टीके छोटे-बड़े विविध प्रकारके बर्तन बनाता है-करता है, परन्तु मिट्टी, चक्र, दण्ड और छोटे-बड़े विविध प्रकारके बर्तनसे तन्मय होकर नहीं करता है,

गोत्र कर्मका चित्र

पृष्ठ - ४३

क्योंकि कुम्हार ऐसा विचार- चिन्तवन नहीं करे तो भी कुम्हारके अन्तःकरणमें यह अचल निश्चय है कि मैं मिट्टी नहीं और मिट्टीके छोटे-बड़े बर्तन आदि कर्म है वह भी मैं नहीं तथा दण्ड चक्रादिक कर्म है वह भी मैं नहीं, और हड्डी-मांस-चर्मादिकमय जो यह शरीर है वह भी मैं नहीं, तथा तन-मन-धन-वचनादिक हैं वह भी मैं नहीं- इत्यादि रूपसे कुम्हारके अन्तःकरणमें अचल (निश्चय) है; अतःयहां निश्चय स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानस्वभावमें यही भावभासन होता है कि जैसे मिट्टीका कार्य घट है उसके बाहर और भीतर मिट्टी है, तथा जलफेन-तरंग-बुद्‌बुदा उपजते हैं वे जलसे जुदे नहीं,-इस प्रकार जो जिसका है वह उसीका है, कार्य-कारणरूप (अन्यमें) फैलता नहीं, वैसे ही जिस वस्तुका कर्म, कारण, कार्य और कर्ता है वह जिसका जो है उसका वही है। अर्थात् जैसे व्यवहारदृष्टिसे देखिये तो मिट्टीके बर्तनका कुम्हार कर्ता है, परन्तु निश्चयदृष्टिसे परमार्थरूप सत्यार्थ दृष्टिसे देखिए तो कुम्हार, मिट्टीके बर्तन, मिट्टी, चक्र और दण्डादिक इनमें (परस्पर) एकमयपना नहीं है, इसलिये मिट्टीके वर्तनरूप कर्मकी करनेवाली मिट्टी ही है; वैसे ही व्यवहारसे नीचगोत्र-उच्चगोत्रको जीव करता है तथा निश्चय स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानदृष्टि द्वारा देखिये तो ज्ञानमयी जीव नीचगोत्र-उच्चगोत्रको नहीं करता है। अर्थात् गोत्रकर्मको करनेवाला गोत्रकर्म ही है, कर्मका विधि-निषेध कर्मका कर्म ही करता है। निश्चय सम्यग्ज्ञानदृष्टिसे (इस प्रकार) देखना कि ज्ञानगुणमयी वस्तु अमूर्तिक है, और कर्म मूर्तिक है, कृत्रिम है। जैसे सूर्य और अन्धकारको तत्स्वरूप मेल नहीं वैसे ही कर्म और केवल ज्ञानका (तत्स्वरूप) मेल नहीं।

इस प्रकार गोत्रकर्म विवरण समाप्त हुआ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

अन्तराय कर्म विवरण

अन्तराय कर्म यंत्र	
दान	अन्तराय
लाभ	अन्तराय
भोग	अन्तराय
उपभोग	अन्तराय
वीर्य	अन्तराय

(दोहा)

त्याग-ग्रहणसे भिन्न है सदा सुखी भगवान।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, स्वानुभव परमान।।

जैसे राजाने भण्डारीसे कहा कि 'इसे एक हजार रूपया दो,' परन्तु भण्डारी नहीं देता है, वैसे ही भीतर अन्तःकरणमें मनराजा तो हुक्म करता है कि 'सर्व माया-ममता छोड़ दूं,' परन्तु भण्डारीके समान अन्तराय कर्म नहीं छोड़ने देता है। यहाँ स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावका स्वानुभव स्वयं इस प्रकासे लेना-जैसे सूर्यसे अन्धकार भिन्न है वैसे ही मेरे स्वस्वरूप स्वानुभव सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसे ये तन-मन-धन-वचनादिक, पाप-पुण्य, जगत और संसार अलग हैं, तब तौ मैं इन्हें क्या त्यागूं और क्या ग्रहण करूं ? जैसे सूर्यसे प्रकाश अगल नहीं है वैसे ही यदि मेरे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसे ये तन- मन-धन-वचनादिक, पाप-पुण्य, जगत, संसार अलग नहीं हैं तो भी क्या त्यागूं और क्या ग्रहण करूं ? अथवा जैसे सूर्य सूर्यको कैसे ग्रहण करे तथा सूर्य अन्धकारको कैसे ग्रहण करे और सूर्य अन्धकारको कैसे

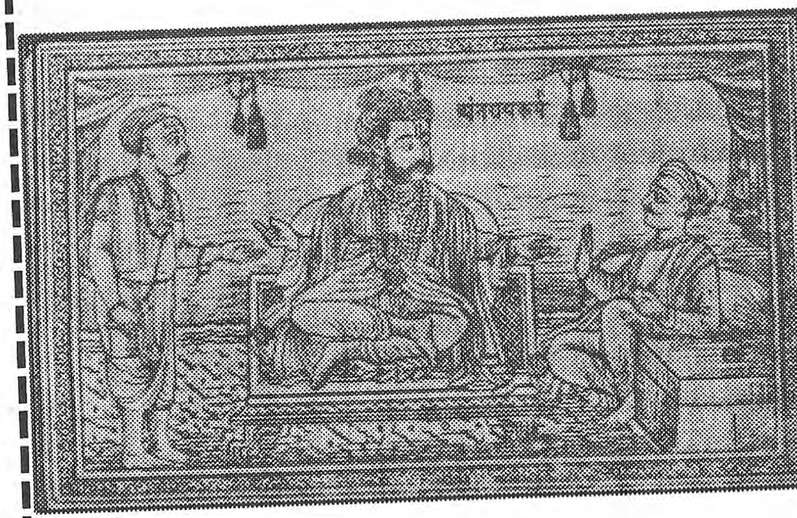

अन्तराय कर्मका चित्र

पृष्ठ - ४६

त्यागे ? वैसे ही मैं मेरे केवल ज्ञानमयी स्वभावको कैसे त्यागूं तथा ग्रहण भी कैसे करुं ? तथा जो मेरे केवल ज्ञानमयी स्वभावसे सर्वथाप्रकार भिन्न है, वर्जित है, त्याज्य ही है उसे कैसे त्यागूं और उसे ग्रहण भी कैसे करूं ?

राजा भण्डारीसे कहता है कि 'इसे १००० एक हजार रुपया दो' परन्तु यह नहीं कहता कि 'मैं राजा हूं, मुझे ही उठाकर इसे दे दे,' अर्थात् राजा परवस्तुके देनेका हुक्म करता है, परन्तु अपना स्वभाव-लक्षण देनेका हुक्म नहीं करता, वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु अपना वस्तुपना न तो किसीको देता है और न किसीके पाससे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी वस्तुत्व स्वभावको लेता है। **भावार्थ :-** स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावमें पुद्गलादिक जड़ अज्ञानमयी वस्तुका व्यवहार-लेना देना-सम्भवता नहीं। जैसे सूर्यमें प्रकाशगुण सूर्यके स्वभावसे ही है वैसे ही जिस वस्तुमें देखने-जाननेका गुण स्वभावसे ही है वह वस्तु द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मको मात्र जानती ही है, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मको करती नहीं, कारण कि ज्ञान और अज्ञानमें परस्पर अन्धकार-प्रकाशवत् अन्तरभेद है तथा ज्ञान- अज्ञानमें परस्पर जल-कमलवत् मेल है। विचार करो ! यह द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म है वह स्वभावसे ही अज्ञान वस्तुका भेद है, उसका कर्ता केवल ज्ञानस्वभावमें कौन है ? और जो ये ज्ञानावरण आदि आठ कर्म हैं वे सब ही पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, उन्हें केवल ज्ञानमयी आत्मा करता नहीं। जो मात्र जानता है वह जानता ही है। निश्चयसे ज्ञानावरणीयरूप परिणाम हैं वे, जैसे दही-दूध गोरसके व्याप्यरूप खट्टे-मिठे परिणाम हैं। वैसे, पुद्गलद्रव्यके व्याप्यरूप, पुद्गलद्रव्यके ही परिणाम हैं। जैसे गोरसके निकट बैठा हुआ पुरुष उसके परिणामको देखता जानता है, वैसे ही आत्मा

ज्ञानमयी है वह पुद्गलके उन परिणामोंका ज्ञाता-दृष्टा है, अष्ट कर्म आदिका कर्ता नहीं। तो क्या है ? जैसे गोरसके निकट बैठा हुआ पुरुष उसे देखता है, उस देखनेरूप अपने परिणामको-जो अपनेसे व्याप्तरूप होता है उसको-व्यापकर देखता ही है, वैसे ही (आत्मा) पुद्गलपरिणाम हैं निमित्त जिसका ऐसे अपने ज्ञानको-अपनेसे व्याप्तरूप होते हुएको-व्यापकर जानता ही है। इसीप्रकार ज्ञानी ज्ञानका ही कर्ता है। अर्थात् ज्ञानी है वह अज्ञानमयी वस्तुसे तन्मयी होकर कदाचित् कोई प्रकार भी द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म आदि अज्ञानमयी कर्मका कर्ता नहीं। बहुत क्या कहूं ? ज्ञान और अज्ञान सूर्य-प्रकाशवत् (कभी) एक हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं।

इस प्रकार अन्तराय कर्म विवरण समाप्त हुआ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

भ्रान्तिखण्डन दृष्टान्त

(दोहा)

स्वस्वरूप समभावमें, नहीं भरमको अंश।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, सुन चेतन निरवंश।।

दृष्टान्त है, वह दृढ़ताके लिये है। स्वभाव सम्यग्ज्ञानदृष्टि रहित जीव है वह तो आपको और भ्रम-भ्रान्ति संकल्प-विकल्पको एक ही तन्मयवत् समझता है, मानता है, कहता है। तथा कोई जीव गुरु-उपदेश पाकर स्वभाव सम्यग्ज्ञानदृष्टि होनेके पश्चात् विभ्रान्ति- भ्रममें दुःखी होकर यह समझता है, मानता है, कहता है कि तन-मन-धन-वचनसे तथा तन-मन-धन-वचनका जितना भी शुभाशुभ व्यवहार क्रियाकर्म है उससे अतत्स्वरूप भिन्न कोई ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सदाकाल जागती ज्योति नहीं है। उसके समाधानके लिये दृष्टान्त-

जैसे किसी गुरुने शिष्यसे कहा कि हे शिष्य ! यह एक नमककी डली इस जलमें भरे हुए तसलामें (या) तपेलामें डाल दे। तब शिष्यने गुरुकी आज्ञानुसार उस नमककी डली को उस जलसे भरे हुए तसलेमें (या) तपेलामें डाल दिया तथा एक तरफ एकान्तमें रख दिया। पश्चात् दूसरे दिन गुरुने शिष्यसे कहा -हे शिष्य ! पिछले

दिन तूं ने जलसे भरे हुए तसलामें (या) भगोनामें नमककी डली डाली थी, वह ले आओ। तब गुरुकी आज्ञानुसार शिष्य शोघ्रतापूर्वक जाकर उस जलसे भरे हुए तशीसलामें (या) भगोनामें हाथके स्पर्श द्वारा खोजने लगा, देखने लगा। बहुत देर तक तसला (या) भगोनामें उस जलका मन्थन किया तो भी उसे नमकके अनुभवका भास नहीं हुआ, अर्थात् नमक नहीं दिखाई दिया। तब शिष्यने कहा-हे गुरुजी ! जलमें नमक नहीं है। गुरुने कहा-हे शिष्य ! तूं कहता है कि नहीं है, पर वहीं है। पुनः शिष्यने कहा कि नहीं है। तब गुरु कही कि है शिष्य ! जिस तसलामें जल है उसमेंसे तूं एक अंजुलि जल पी। तब शिष्य जल पीने लगा, कुछ थोड़ा पिया। पीनेके साथ ही शिष्यको उसी समय नमकका अनुभव हुआ और कहा कि हे गुरुजी ! नमक है। वैसे ही तन-मन-धन-वचनसे तथा तन-मन-धन-वचनका जितना शुभाशुभ व्यवहार क्रियाकर्मादिक है उससे सर्वथाप्रकार भिन्न स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सदाकाल जागती ज्योति जहाँ (उसका) निषेध है वहीं है, वह स्वानुभवमात्रगम्य है।

कोई जीव आपको ऐसा मानता है, जानता है, कहता है कि मैं सिद्धपरमेष्ठी परब्रह्म परमात्मा नहीं हूं। उसकी एकता-तन्मयताके लिये दृष्टान्तद्वारा गुरु समाधान करता है ! हे शिष्य इस भवनमें तुं उच्च स्वरसे ऐसी आवाज कर कि 'तूं ही;' तब गुरुकी आज्ञानुसार शिष्यने उस भवनमें जाकर उच्च स्वरसे कहा कि 'तूं ही;' तब उस भवनाकाशमेंसे ऐसी ही प्रतिआवाज-ध्वनि आई कि 'तूं ही ' तब उस शिष्यके अंतःकरणमें ऐसा अचल निश्चय हुआ कि जिस सिद्धपरमेष्ठी-परमात्माकी कर्णद्वारा वार्ता सुनता था वह तो स्वानुभवमात्रगम्य मैं ही हूं।

(जो) सिद्धपरमेष्ठि - परमात्माको अपने स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसे भिन्न समझता है, मानता है, कहता है उसके समाधानके लिये गुरु कहता है कि तुम्हारा तुम्हारे ही समीप है। यहां तीन दृष्टान्तों द्वारा स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानका अनुभव देता हूं, श्रवण करो। जैसे एक स्त्री अपनी नथनी नाकमेंसे निकालकर अपने ही कण्ठके आभरणमें पहराकर पश्चात् घरके कार्य-धंधा करनेमें एकाग्रचित्त हो गई। दो-चार घड़ी बाद उस स्त्रीने अपनी नाकको हाथ लगाया, तब उस स्त्रीको ऐसी भ्रान्ति हुई कि 'मेरी नथनी मेरे पास नहीं है, हाय ! मेरी नथनी कहां गई ?' इत्यादि भ्रान्ति द्वारा वह दुःखी हो गई। श्रीगुरुके चरण-शरणमें आकर गुरुसे कहा कि हे स्वामिन् ! मेरी नथनी मेरे समीप नहीं है, न जानू कहाँ गई। तब गुरुने कहा कि 'तेरी नथनी तेरे ही समीप है, इस दपर्णमें देख। तब वह स्त्री दपर्णमें अपना मुख देखने लगी, उसी समय अपने कण्ठाभरणमें लगी हुई अपनी नथ अपने समीप देखकर उस स्त्रीने गुरुसे कहा कि स्वामिन् ! मेरी नथ मेरे समीप ही है। ऐसे ही सिद्धपरमेष्ठीसे सिद्धपरमेष्ठी भिन्न नहीं है।

प्रश्न :- मैं तो सिद्धपरमेष्ठीसे भिन्न हूं ?

उत्तर :- जैसे सूर्यसे अन्धकार भिन्न है वैसे ही (यदि) तूं सिद्धपरमेष्ठीसे भिन्न है, तब तो तूं करोड़ तप-जप-व्रत-शील-दान-पूजादिक शुभाशुभ कर्म-क्रिया करता हुआ भी कदाचित् किसी प्रकार भी सिद्ध परमेष्ठीसे तन्मयी न हुआ, न होगा और न है। तथा जैसे सूर्यसे प्रकाश एक तन्मयी अभिन्न है वैसे ही तूं सिद्धपरमेष्ठीसे एक तन्मयी अभिन्न है, तो भी तूं सिद्धपरमेष्ठीसे एक तन्मयी अभिन्न होनेके लिये करोड़ जप-तप-व्रत-शील-दान-पूजादिक शुभाशुभ कर्म-

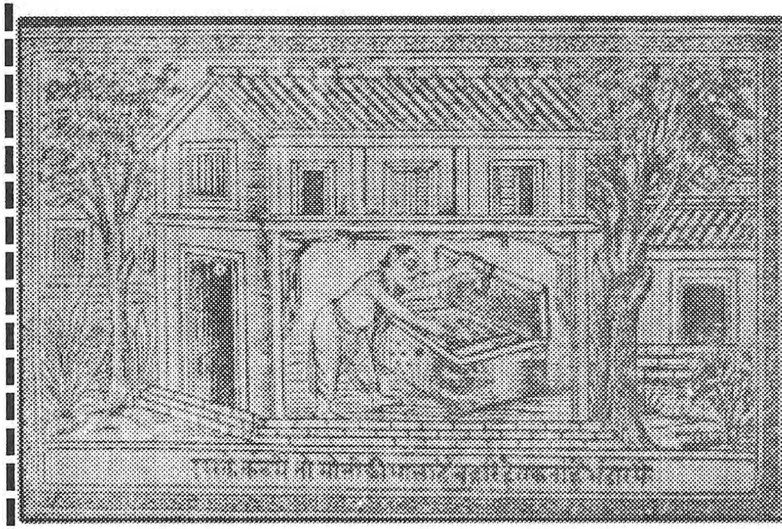

मोतीकी माला पुरुषके कण्ठमें है, परन्तु खोजता है भण्डारमें।

पृष्ठ - ५४

क्रिया करता हुआ भी कदाचित् किसी प्रकार भी सिद्ध परमेष्ठीसे एक तन्मयी न होगा, न हुआ था और न है। सिद्ध परमेष्ठीसे एकता और भिन्नताकी ये दोनों भ्रान्ति-विकल्पता स्वभावसम्यग्ज्ञानमें कभी सम्भव नहीं हैं।

जैसे कण्ठमें मोतीकी माला है, वह मोतीकी माला मोतीकी मालाके समीप तन्मयी ही है। (जो) उसे भ्रम-भ्रान्तिवश अन्य स्थानमें खोजता है उसे गुरुने कहा कि अन्य स्थानमें मोतीकी माला नहीं है, तेरे ही कण्ठमें मोतीकी माला है वह मोतीकी मालासे तन्मयी समीप है। ऐसे ही सिद्ध परमेष्ठी है वह सिद्धपरमेष्ठीसे तन्मय समीप ही है।

जैसे सूर्यके देखनेसे सूर्यकी निश्चयता-सूर्यानुभव होता है, वैसे ही सिद्धपरमेष्ठी परमात्मा सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यके देखनेसे सिद्धपरमेष्ठी परमात्मा सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यकी निश्चयता-स्वानुभव होता है।

जैसे सुवर्णका कड़ा-मुद्रिका-कंठी-दोरा-मुहर आदि निश्चयस्वभावदृष्टिसे देखिये तो सुवर्णसे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी सिद्धपरमेष्ठी परमात्मासे, निगोदसे लेकर मोक्षपर्यन्त जितनी जीवराशि एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त है, वह निश्चय स्वभावदृष्टिसे देखिये तो भिन्न नहीं है।

अपूर्व अनुभव बतलाता हूं, श्रवण करो-कोई जीव स्वयंको सिद्धपरमेष्ठीसे भिन्न समझता है तथा स्वयंको ही सिद्धपरमेष्ठीसे अभिन्न समझता है-ऐसी ये दो कल्पनाएँ जिस जीवके अंतःकरणमें अचल हैं वह जीव मिथ्यादृष्टि है।

जैसे लौकिकमें यह कहना प्रसिद्ध है कि देखोजी ! तुम समझकर काम-कार्य-कर्म करते तो तुम्हें यह नुकसान किसलिये होता ? वैसे सद्गुरुके उपदेश-वचन द्वारा कोई जीव आपके आपमें आपमयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावको समझकर पूर्व प्रयोगवश शुभाशुभ काम-कार्य-कर्म करता है उसके सम्यग्ज्ञानस्वरूपी धनका कभी भी नुकसान होनेका नहीं।

जैसे लौकिकमें यह कहना प्रसिद्ध है कि देखोजी ! मार्गमें कंटक आदि विघ्न बहुत हैं, बचकर जाना; वैसे ही कोई जीव सद्गुरुके उपदेशवचन द्वारा आपके आपमें आपमयी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावको तन-मन-धन-वचनसे तथा तन- मन-धन-वचनका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रिया-कर्म है उससे बचाकर, फिर तीनसौ तैतालीस राजुप्रमाण इस लोकमें बचकरके भ्रमण करे तो भी जो स्वभावसम्यग्ज्ञान है वह संसारमें फंसनेका नहीं।

जैसे चक्कीके पाटके ऊपर बैठी हुई मक्खी है; वह चक्कीका पाट चारों तरफ गोल फिरता है, अतः उसके ऊपर बैठी हुई मक्खी भी फिरती है; वैसे ही स्वभावसे अचल सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा संसार-चक्रके ऊपर फिरता है तो भी अचलका अचल ही है।

जैसे समुद्र स्वभावमें जैसा है वैसा है, तो भी व्यवहारनयसे समुद्रका किनारा हदप्रमाण है इसलिये समुद्र बंधा हुआ है तथा समुद्रको किसीने बांधा नहीं इसलिये वही समुद्र मुक्त है, वैसे ही स्वयं सिद्ध परमात्मा व्यवहारनयसे बद्ध-मुक्तरूप है, परन्तु स्वभावसम्यग्ज्ञानमें - स्वानुभवदृष्टिमें देखिये तो बद्ध-मुक्त तो दूर रहो, किन्तु बद्ध-मुक्तकी कल्पनाका अंश भी सम्भव नहीं।

जैसे सूर्यके भीतर अन्धकार नहीं है वैसे ही यह जगत-संसार स्वानुभव सम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके भीतर नहीं।

जैसे सूर्यकी और अन्धकारकी एकता-तन्मयता नहीं है वैसे ही ज्ञानमयी परमात्माकी और जगत-संसारकी एकता तन्मयता नहीं।

जैसे बकरियोंकी मण्डलीमें जन्म-समयसे ही भ्रमवश परवशतासे सिंह रहता है और दूसरा सिंह जंगलमें स्वाधीन रहता है, इन दोनो सिंहोंकी जाति, लक्षण, स्वरूप, नामादिक एक ही है, परन्तु परस्परकी अभेदतामें निश्चयसे भेद है; वैसे ही निगोदसे लेकर मोक्षपर्यन्त व सम्यग्ज्ञानस्वभावपर्यन्त जीवराशि, नाम जाति लक्षणादि सहित एक ही है, परन्तु परस्पर अभेदस्वरूपमें भेद है। इस भेदबुद्धि और अभेदबुद्धिकी कल्पानाका विघ्न-दु:ख श्री सद्गुरुके चरणोंकी शरण होनेसे (लेनेसे) मिटेगा।

जैसे एक मोटे-चौड़े-लम्बे-बहुत विस्तीर्ण परिमाणके स्वच्छ दर्पणमें अनेक प्रकारकी अनेक चल-अचल रंग-बिरंगी वस्तुएँ दिखाई देती हैं, वैसे ही स्वच्छ ज्ञानमयी दपर्णमें यह अनेक विचित्रतामय जगत-संसार दिखाई देता है।

जैसे सूर्यके प्रकाशमें कोई पाप करता है, कोई पुण्य करता है, कोई मरता है, कोई जन्मता है इत्यादिका शुभ-अशुभ पाप- पुण्य, जन्म-मरण आदि सूर्यको लगता नहीं, सूर्य यह जन्म-मरण, पाप-पुण्य तन्मयी होता नहीं; वैसे ही सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यके प्रकाशमें पाप-पुण्य, जन्म-मरण कर्म आदिक शुभ-अशुभ होते हैं, उनका फल और मूलादिक है वह सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यको पहुंचता नहीं, तन्मय होता नहीं।

जैसे सूर्यके सूर्यको देखनेकी इच्छा सम्भव नहीं, वैसे ही ज्ञानमयी परमात्माके ज्ञानमयी परमात्माको देखनेकी इच्छा सम्भव नहीं।

जैसे धोबी निर्मल जलसे भरे हुए तालाबमें कपड़ा धोता है, उसे प्यास लगने पर वह मूर्ख धोबी विचार करता है कि ये दो वस्त्र धोनेके बाद जल पिऊँगा, परन्तु वस्त्र धोनेके बाद फिर भी यही

विचार किया कि ये धोनेके बाद, ये धोनेके बाद (जब पिऊँगा), इस प्रकार लगातार संकल्प-विचार करता करता वह धोबी निर्मल नीरमें रहा हुआ निर्मल नीरमें ही मर गया, परन्तु जल नहीं पिया। वैसे ही सर्व जीवराशि निर्मल सम्यग्ज्ञानमयी जलसे भरे हुए समुद्रमें पर वस्तुको उज्जवल करता है, 'यह करनेके बाद गुरुके उपदेश द्वारा सम्यग्ज्ञानरूपी जल पीकर सुखी होऊँगा, यह करनेके बाद सम्यग्ज्ञानमयी जल गुरुके उपदेशसे पिऊँगा' ऐसे करते करते मरकर कहाँसे कहां चला जाता है।

जैसे धोबी मलिन कपड़ेको साबुन, क्षार और पत्थर आदिके निमित्तसे धोता है, परन्तु धोबी वस्त्र, साबुन, क्षार और शिला आदिसे तन्मय होकर नहीं धोता है, वैसे ही शुभाशुभरूप लगी हुई कालिमाको सम्यग्दृष्टि धोता है, परन्तु वह (सम्यग्दृष्टि) शुभाशुभसे तथा शुभाशुभका जितना व्यवहार-क्रियाकर्म है उससे तन्मय होकर नहीं धोता है।

(**दोहा**)

'भेदज्ञान साबु भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आत्मा, घोवै निज गुण-चीर।।'

जैसे कोरे पके हुए मिट्टीके नवीन कलशके ऊपर हवाके योगसे धूलि आकर लगती है वैसे ही सम्यग्दृष्टिको कर्मरज आकर लगती है।

जैसे बहुत वर्षसे तेलसे भरे हुए चिकने मिट्टीके कलशके ऊपर हवाके योगसे धूलि आकर लगती है, वैसे ही मिथ्यादृष्टिके कर्मवर्गणा

आ आकर लगती है।

जैसे किसी मूक पुरुषके मुखमें मिश्री-गुड़-खांड डाल दी गई, उसे मीठेपनका अनुभव तो हुआ पर कह नहीं सकता, वैसे ही किसी जीवको गुरुके उपदेशसे अपने आपमें आपमयी स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभव तो हुआ, परन्तु कह नहीं सकता।

प्रश्न :- गुरु स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभव कैसे देता होगा ?

उत्तर :- गुरुकी तो गुरु ही जाने तो भी कुछ कहता हूं- जैसे चन्द्रदर्शनके इच्छुक किसीने गुरुसे पूछा 'चन्द्र कहाँ है ?' तब गुरुने कहा कि 'वह चन्द्रमा मेरे अंगुलीके ऊपर है', इत्यादि अनेक प्रकारसे गुरु स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभव देता है।

जैसे किसी पुरुषकी स्त्रीने अपने पतिसे कहा कि तुम इस बालकको खिलाओ, गोदमें लो तो मैं गृहकार्य करूं, तब वह पुरुष अपने पुत्रको अपनी गोदमें लेकर खिलाने लगा; उसी समय बालक रोने लगा, तब पुत्रका पिता उस बालककी स्थिरता-सुखके लिये कहता है कि पुत्र ! रो मत, अपनी माँ (भीतर) बैठी है; यहाँ विचार करना चाहिए कि माँ तो उस बालककी है, पुरुषकी नहीं, पुरुषकी तो वह स्त्री है; स्त्रीको माता कहना व्यवहारविरुद्ध है, तो भी बालककी स्थिरता-सुखके लिये वह पुरुष व्यवहारविरुद्ध वचन बोलता है; वैसे ही शिष्यमण्डलीके सुख-स्थिरता के लिये गुरु स्यात् अपभ्रंश वचन बोलता है, गुरुका हेतु उत्तम है।

जैसे अग्निमें कपूर, चन्दन आदि डाला जाय तो उसे भी अग्नि जला देती है तथा चमड़ा मल आदि डाला जाय तो उसे भी अग्नि जला देती है। वैसे ही सम्यग्ज्ञानाग्निमें ये शुभ-अशुभ, पाप- पुण्य आदि जल जाते है अर्थात् नहीं रहते हैं।

जैसे एक जाति, एक लक्षण, एक स्वरूप, एक तेज और एक गुणादि युक्त रत्नराशि दूरसे एकसी ही दिखाई देती है, परन्तु हैं वे रत्न भिन्न भिन्न; जैसे अग्निके अंदारोंकी राशि दूरसे एकसी ही दिखाई देती है, परन्तु हैं वे अंगारे भिन्न भिन्न; वैसे ही जीवराशि भिन्न भिन्न है, सबका गुण-लक्षण-जाति-नामदिक एक है।

जैसे दहीको मथकर उसमेंसे मक्खन निकालनेके बाद उस मक्खनको छांछ-तक्र-मठामें डाल दे तो भी वह मक्खन छांछ- तक्रमें मिलकर एकरूप होता नहीं, वैसे ही गुरु संसारसागरमेंसे जीवको निकालकर, बादमें उसे संसारसागरमें डाल देवे तो भी वह जीव संसारसागरके साथ अग्नि-उष्णतावत् मिलकर एकरूप होता नहीं।

जैसे किसीके पास सर्पविषनिवारक जड़ी-बूटी मंत्र है तो वह सर्पसे डरता नहीं, वैसे ही किसीके पास स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञान तन्मयरूपसे है तो वह संसाररूपी सर्पसे नहीं डरता है।

जैसे कुम्हारका चक्र दण्डादिकके योगसे फिरता है और दणडादिकका योग पृथक् होनेके बाद भी वह चक्र कुछ काल तक फिर भी फिरता रहता है, वैसे ही किसी जीवके चार घातीकर्म पृथक् होनेके बाद भी (वह) पूर्व प्रयोगवश कुछ किंचित् काल तक संसारमें घूमता रहता है।

जैसे गोबरके सूखे कंडेको एक कणिका मात्र भी अग्नि लग जाय तो वह अग्नि क्रमसे गोबरके उस सूखे कंडेको जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही किसी जीवको गुरुके उपदेशके एक समय कालमात्र भी सम्यग्ज्ञानाग्नि तन्मय होकर लग जाय तो आठ कर्म आदि नामकर्म तकको जला देगी। तत्पश्चात् जो बचने योग्य है, वहकी वही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु, अखण्ड

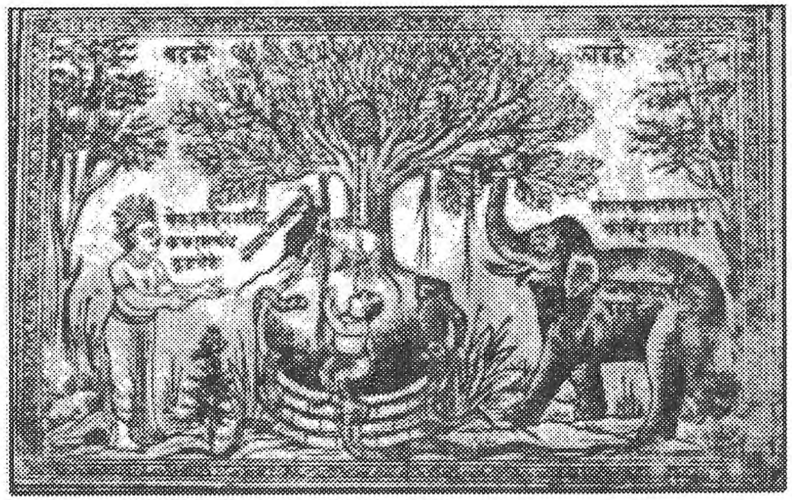

संसार दर्शन

पृष्ठ - ५१

अविनाशी रहेगी।

जैसे काष्ठ-पाषाण-चित्रामकी स्त्रीके आकारकी पुतलीको तीव्र काम-रागभावसे देखते देखते किसी कामीका वीर्यबन्ध छूट जाता है, वैसे ही किसी धातु-पाषाणकी पद्मासन खड्गासन ध्यानमुद्रायुक्त वैराग्यसूचक मूर्तिको कोई मुमुक्षु अपने तीव्र वीतराग भावसहित होकर देखे तो उसका अष्टकर्मका बन्ध तत्काल छूट जाता है।

जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने घरका कार्य करती है परन्तु उसके अन्तःकरणमें वासना व्यभिचारी पुरुषकी ओर लगी रहती है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकर्मके योगसे सांसारिक कामकाज करता है परन्तु उसके अन्तःकरणमें स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानकी दृढ़- अचल वासना (निरन्तर बनी रहती) है, अर्थात् वह स्वसम्यग्ज्ञानको और स्वयंको अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मयी समझता है-मानता है।

जैसे कोई मुनीम दुकान व कोठीका कामकाज राग-द्वेष ममता-मोहसहित होकर करता है, परन्तु उसके अन्तःकरणमें ऐसी अचलता रहती है कि धन-परिग्रह तथा धन-परिग्रहका शुभाशुभ फल मेरा नहीं है, सेठका है; वैसे ही सम्यग्दृष्टि पूर्वकर्मप्रयोगसे [1] संसारका शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म रागद्वेष ममता-मोह सहित करता है, परन्तु उसके अन्तःकरणमें ऐसा दृढ़-अचल-अवगाढ़ है कि संसारका जितना कुछ शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म, राग-द्वेषादि तथा उसका शुभाशुभ फल है वह मेरे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुके साथ तन्मय नहीं है, यह जो संसारका शुभाशुभ कर्मादिक है वह

---

१ - पूर्वके द्रव्यकर्मका उदय बाह्य निमित्त है और अपना सराग परिणाम दोष है। इनके योगमें संसारका शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म होता है यहीं आशय यहाँ लिया गया है।

सब तन-मन-वचनसे तन्मय है, उसीका ही है।

जैसे स्वच्छ दर्पणमें अग्नि तथा ज़लकी प्रतिच्छाया दिखाई देती है, पर इससे वह दर्पण उष्ण या शीतल होता नहीं, वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी दपर्णमें संसारके शुभाशुभ क्रिया-कर्मकी प्रतिच्छायाका भास होता है, परन्तु वह स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी दर्पण राग-द्वेषके साथ तन्मय नहीं होता।

जैसे आकाशमें काले पीले लाल (रंगके) मेघ-बादल बिजली आदि रूप अनेक विकार होता है तथा वह विघट जाता है तो भी उससे आकाश विकारी नहीं होता, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी आकाशमें इन क्रोध-मान-माया-लोभादिकके होने पर भी वह स्वसम्यग्ज्ञानमयी (आकाश) राग-द्वेष आदिके साथ तन्मय नहीं होता।

जैसे जिस घरमें अग्नि लगती है वह घर जल जायगा, परन्तु घरके भीतर बाहर जो आकाश है वह कभी भी किसी प्रकार जलता-सुलगता नहीं, वैसे ही देह-शरीररूपी घरमें आधि-व्याधि- रोगादि अग्नि लगे तो देह-शरीररूपी घर जलेगा-सुलगेगा, परन्तु देह-शरीर व लोकालोकके भीतर-बाहर आकाशवत् स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमयी (निर्मल आकाश) है वह कभी भी किसी प्रकार भी जलेगा-सुलेगा व मरेगा-जन्मेगा नहीं।

जैसे सूखे कंडेको कणिकामात्र भी अग्नि लग जाय तो उस अग्निके योगसे वह सूखा गोबर क्रमसे जल जाता है, वैसे ही किसी जीवके सद्गुरुके वचनोपदेश द्वारा नेत्रके एक टिमकार मात्र कालके भीतर व एक समय मात्र कालमें सम्यग्ज्ञानाग्नि तन्मय रूपसे लग जाय तो उस जीवका द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म यथाक्रम जल जाय-सुलग जाय इसमें कभी भी किसी प्रकारका सन्देह नहीं है।

जैसे कोई स्त्री अपने स्वपतिको त्यागकर अन्य पुरुषके साथ सेवा-रमण आदि करती है तो वह स्त्री व्यभिचारिणी मिथ्यात्विनी है, वैसे ही कोई अपने आपमें आपमयी स्वसम्यग्ज्ञानमयी देवको छोड़कर अज्ञानमयी देवकी सेवा-भक्तिमें लीन है वह मिथ्यादृष्टि है।

जैसे कोई मदिरा-वारुणीके पीनेका सर्वथाप्रकार त्याग करे तो उसके मदोन्मत्तपनेका त्याग हो जायगा, वैसे ही जो जीव जाति- कुल-रुप-तर-बल-विद्या-लाभ और अधिकार इन आठ मदोंका सर्वथाप्रकारसे त्याग करेगा वह निश्चय जो स्वसम्यग्ज्ञानगुण है उसके साथ तन्मय हो जायगा।

जिसके तिल-तुषमात्र परिग्रह नहीं है तथा जो पांच प्रकारके शरीरके साथ भी कभी किसी प्रकारसे तन्मय नहीं है वही सद्गुरु है।

जैसे कोई मद्य-भांग आदिके पीनेसे मदोन्मत्त होता है उसे लौकिकजन ऐसा कहते हैं कि 'यह मतवाला है,' वैसे ही कोई अपूर्व मतिमंद मदिरा पीकर मदोन्मत्त होरहे हैं वे जैनमतवाले, विष्णुमतवाले, शिवमतवाले और बौद्धमतवाले इत्यादिक हैं। उनसे कोई पूछे कि तुम कौन हो ? तब वे अपने मुखसे अपने-आप कहते हैं कि 'हम जैनमतवाले, हम विष्णुमतवाले, हम शिवमतवाले, हम बौद्धमतवाले' इत्यादि। ये सब मतवाले स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुके साथ तन्मयी नहीं हैं।

जैसे सूर्य अपना स्वभावगुण प्रकाश नहीं छोड़ता वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान अपने ज्ञानगुणको नहीं छोड़ता।

जैसे कोई कंबल अंगके ऊपर ओढ़कर मधुके छत्ताको तोड़ने लगे उसको उस समय हजारों मधुमक्खियां लगीं तो भी वह पुरुष

अडंक रहता है, वैसे ही किसी जीवने गुरुवचन-उपदेशसे स्वसम्यग्ज्ञानानुभवरूप कंबल ओढ़ लिया तो उसे यह संसार-मक्खी नहीं चिपटती।

जैसे कौआ बोलता है, वैसे ही किसीको स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी तन्मयता-परमावगाढ़ता तो हुई नहीं और बड़े-बड़े वेद-सिद्धान्त-शास्त्र-सूत्र पढ़ता है, वह कौआके भाषण समान है।

जैसे कस्तूरी-मृगके समीप ही कस्तूरी है, परन्तु नाक द्वारा कस्तूरीकी सुगन्ध लेकर उसे इधर-उधर जंगलमें खोजता फिरता है, जोर जोरसे दौड़ता है; वैसे ही जीवके समीप ही उससे तन्मयी स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है, पर यह जीव उसे आकाश-पाताल लोकालोकमें खोजता है। अज्ञानी जीवको यह खबर नहीं कि जिसे मैं खोजता हूं वह मेरी वस्तु तो मेरे ही पास है-मेरे स्वसम्यग्ज्ञानसे तन्मयी है अथवा मैं स्वयं ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा हूँ।

जैसे इन्द्रजालका खेल मिथ्या है, वैसे ही इस संसारका खेल मिथ्या है, मात्र स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा सत्य है।

जैसे स्वप्नकी माया झूठी है, वैसे ही संसारकी माया झूठी है, मात्र स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा सत्य है।

जैसे जहाँ देह नहीं है, वहाँ जन्म-मरण-नामादिक नहीं हैं, अर्थात् जहाँ देह है वहाँ ही उनसे तन्मय जन्म-मरण-नामादिक हैं।

जैसे चलती हुई चक्कीके दोनों पाटोंके बीच जितने गेहूं, चना, मूंग, उड़द आदि अनाज ऊंरिये (डालिये), वे सब पिस जाते हैं, आटा हो जाता है, एक कण-दाना भी नहीं बचता है, परन्तु उसी चलती हुई चक्कीमें कोई-कोई दाना लोहेके कीलेके समीप रहता है वह बच जाता है। वैसे ही संसारचक्रके बीच पड़ा हुआ जीव

तो मरण आदि करके नरक-निगोदमें जा पड़ता है, परन्तु कोई कोई जीव गुरुवचनोपदेश द्वारा आपमें आपमयी अपने स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्माके तन्मयरूपसे शरण हो जाता है वह जीव जन्म-मरणके दुःखसे बच जाता है।

जैसे सर्पिणी १०८ पुत्र जनती है और जनकर कुण्डली बनाकर अपने गोलाकार देहके बीच सब पुत्र समुदायको रखकर क्रमसे सबको भक्षण कर जाती है, परन्तु कोई कोई उस कुण्डलीमें से निकल जाता है-बच जाता है; वैसे ही उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालकी कुण्डलीमेंसे जो कोई जीव निकलकर जुदा पड़ा वह तो बच गया, जो शेष रहे वे उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीके मुखमें समा जाते हैं।

जैसे बांझ (वंध्या) स्त्रीको पुत्रोत्पत्तिका आदि-अन्त पूर्वापर सब विवरण सुनाया जाय तो भी उस बांझ स्त्रीको पुत्रोत्पत्तिका कभी भी किसी प्रकार भी साक्षात् अनुभव नहीं होता; वैसे ही वज्र मिथ्यादृष्टिको स्वसम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिका पूर्वापर विवरण सुनाया जाय तो भी उसे सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिका साक्षात् अनुभव नहीं होता।

जैसे किसीको नाक छिन्न-खंडित है, उसे कोई दर्पण दिखावे तो वह खंडित नाकवाला पुरुष अपने दिलमें ऐसा विचार करता है कि मेरी नाक छिन्न-खंडित है इसलिए यह मुझे दर्पण दिखाता है; वैसे ही मिथ्यादृष्टिको स्वसम्यग्ज्ञानदपर्ण दिखाना वृथा है।

जैसे बांझ स्त्रीको पुरुषका संयोग होने पर भी पुत्रफलके लाभका अनुभव नहीं होता, वैसे ही मिथ्यादृष्टिको (सच्चे) देव-गुरु-शास्त्र और सत्पुरुषका सत्संग होने पर भी स्वसम्यग्ज्ञान-फलके लाभका अनुभव नहीं होता।

जैसे हंस मिले हुए दूध-पानीको भिन्न-भिन्न समझता है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानी इस लोकालोकको तथा अपनेमें आपमय अपने

स्वसम्यग्ज्ञानको भिन्न-भिन्न समझता है।

जैसे स्वप्नावस्थामें घर-कुटुम्ब-बेटा-बेटी-स्त्री-माता-पिता-धन- धान्यादिक (सब) दिखाई देता है, उन्हें जाग्रत समयमें देखे तो वे दिखाई नहीं देते अर्थात् स्वप्नावस्थाके माता-पिता स्त्री-पुत्रादिक सब मर जाते हैं, उसका दु:ख, हर्ष, शोक जाग्रत अवस्थामें नहीं होता; वैसे ही जाग्रत अवस्थाके समयके जो माता-पिता, स्त्री-पुत्रादिक हैं वे स्वप्नावस्थामें नहीं दिखाई देते अर्थात् जाग्रत अवस्थाके समयके माता-पिता स्त्री-पुत्रादिक सब मर जाते हैं, उसका दु:ख हर्ष, शोक स्वप्नावस्थामें नहीं होता। जो सदाकाल देखता-जानता है उसके सन्मुख यह स्वप्नसमयका और जाग्रतसमयका संसार बनता है और बिगड़ता है।

जैसे स्वप्नावस्थामें किसीने किसीके मस्तकका छेद किया-मार गिराया उस समय स्वयंको मरा समझा-माना, बादमें वही (पुरुष) जाग्रत हुआ तब कहने लगा कि 'मैं स्वप्नमें मर गया था' वैसे ही यह जन्म, मरण, पाप, पुण्यादिक (सब) स्वप्नका खेल है, परन्तु जो इस खेलके तमाशेको देखता-जानता है वह स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य ज्ञान है।

जैसे कोई मतवाला अपनी माताको माता ही कहता है, परन्तु उसका विश्वास क्या ? कारण कि वह किसी समय अपनी माताको अपनी स्त्री मान ले तो उसका प्रमाण क्या ? वैसे ही मतमदिरामें मदोन्मत्त हुए ये जैनमतवाले, विष्णुमतवाले, शिवमतवाले, वेदान्तमतवाले और बौद्धमतवाले आदि षट् मतवाले हैं वे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुको औरसे और प्रकार मान लें-कह दें तो उसका प्रमाण क्या ?

जैसे मिट्टीके झूठे घोड़ेके साथ बालक प्रीति करता है वह भी दु:खी है तथा कोई सच्चे घोड़ेके साथ प्रीति करता है वह भी

षट् मतवाले पृष्ठ - ६६

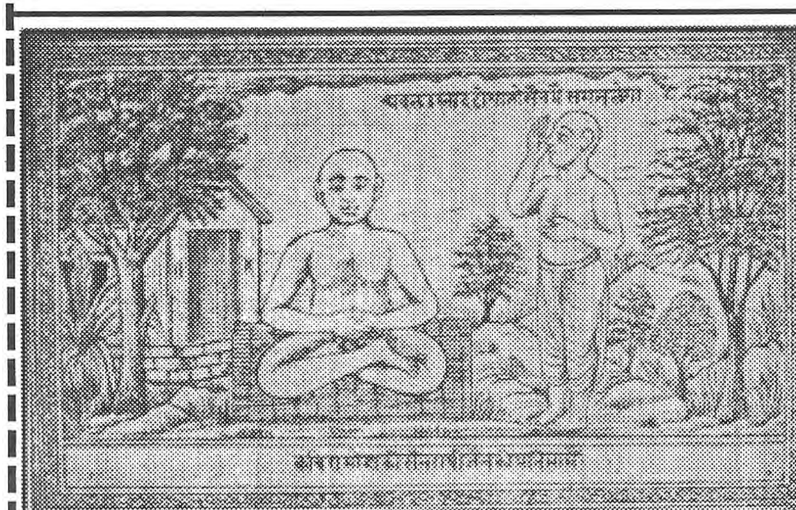

हे कबीर ! मोक्षकी सैन (संकेत) जैनकी प्रतिमामें रखी है।

पृष्ठ - ६८

दुःखी है, कारण-उसके घोड़ेको कोई तोड़े-फोड़े तथा दूसरेके घोड़ेको भी कोई चारा-पानी न दे व मारे (तो वे दोनों ही दुःखी हैं); वैसे ही जो कोई मिट्टी, पत्थर, चित्राम और काष्ठकी झूठी देवमूर्तिके साथ प्रेम-प्रीति करता है वह भी दुःखका ही कारण है तथा कोई सच्चे-सत्य देवके साथ भी प्रेम-प्रीति करता है वह भी दुःखका ही कारण है, अर्थात् स्वसम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुसे भिन्न होकर परवस्तुके साथ प्रेम-प्रीति करेगा तो दुःखानुभवमें लीन ही रहेगा।

जैसे एक पुरुष पाषाण-धातु-काष्ठ और चित्रामकी देवमूर्तिकी बड़े प्रेमभावसे पूजा-प्रणाम करता था; देववश पाषाणकी मूर्ति तो फुट गई-तूट गई, धातुकी देवमूर्तिको चोर-तस्कर उठा ले गया, काष्ठकी देवमूर्ति अग्निमें जल-बल भस्म हो गई तथा चित्रामकी मूर्ति मेघ, हवा व हस्तस्पर्श द्वारा बिगड़ गई। अतः वह धातु-पाषाण आदिकी देवमूर्तिका नष्ट होना आदि अनेक दूषण प्रत्यक्ष अनुभवमें आते हुए देखकर आपमें आपमय अपने स्वसम्यग्ज्ञानानुभवगम्य स्वभावस्वरूप आपको ही देव समझकर चुपचाप रहता है।

जैसे कोई पुरुषने किसी साहूकारकी दुकानके द्रव्य-सुवर्ण- रत्नादिक दूरसे देखकर कहा कि मुझे यह जितना द्रव्य रत्नादिक मुझसे दूर अलग ही दिखाई देता है उसका मेरे त्याग है; वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यक् केवल ज्ञान है, उसके इस संसार-लोकालोकका स्वभावसे ही त्याग है।

जैसे कोई द्रव्यार्थी पुरुष राजाको जानकर तथा उसकी दृढ़ श्रद्धा कर राजाके अनुसार चलता है, रहता है तो उसे राजा द्रव्य देता है; वैसे ही जो जीव प्रथम स्वसम्यक् केवलज्ञान राजाको अपने स्वभावगुणसे तन्मयी समझकर तथा जानकर उसकी दृढ़ परमावगाढ़

श्रद्धा कर केवलज्ञान राजाके अनुसार चलता है, रहता है तो केवलज्ञानराजा उसे स्वभावसम्यग्ज्ञानमयी मोक्ष देता है।

जैसे संस्कृत भाषामें म्लेच्छ नहीं समझता होवे तो उस म्लेच्छको म्लेच्छ भाषामें समझाना चाहिए, वैसे ही अज्ञानीको अज्ञान भाषामें समझाना चाहिए।

जैसे कोई कहे कि 'ये दो राजा परस्पर युद्ध कर रहे हैं;' यहाँ विचारकर देखा जाय तो एक-दूसरेकी सेना लड़ती है, ये दोनों राजा तो अपने-अपने स्वस्थानमें निमग्न हैं; वैसे ही ज्ञान- अज्ञान दोनों ही अपने अपने स्वस्थानमें-अपने-अपने स्वभावमें अपने अपने स्वभावसे ही निमग्न हैं।;

जैसे कोई कहे कि 'राजा इस गावँको लूटता है, जला दिया, इस गाँवको मार दिया, इस गाँवको बचा दिया, इस गाँवकी रक्षा की,' परन्तु विचारकर देखा जाय तो वह लूटना, जलाना, मारना, बचाना इत्यादिक (जितने) कार्य है उनको सेनाके सिपाही-जामादार-फौजदार आदि करते हैं, राजा नहीं करता; वैसे ही स्वसम्यक् केवलज्ञान राजा है, वह किंचित् भी शुभाशुभ क्रियाकर्म नहीं करता।

जैसे सुवर्णका सुवर्णमय कड़ा-कुण्डलादिक भाव (क्रियाकर्म) सुवर्णमय ही होता है तथा लोहेका लोहमय ही होता है, वैसे ही स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानका भाव-क्रियाकर्म सम्यग्ज्ञानमय ही होता है तथा अज्ञानका भाव-क्रियाकर्म अज्ञानमय ही होता है।

जैसे मातंग-चंडालका और उत्तम ब्राह्मणका क्रियाकर्मभाव एक नहीं, किन्तु भिन्न-भिन्न है; वैसे ही ज्ञान और अज्ञानका क्रियाकर्मभाव एक नहीं, अर्थात् भिन्न-भिन्न है।

जैसे किसी पुरुष द्वारा किया हुआ आहार उदराग्निके प्रसादसे मांस-रुधिर-मज्जा-मल और मूत्रादिरूप होता है (परिणम जाता है),

वैसे ही गुरुवचनोपदेश द्वारा जिसके अन्तःकरणमें साक्षात् सम्यग्ज्ञानाग्नि प्रज्वलित हो गई हो उसके सब कर्म स्वयं ही अपनी- अपनी परिणतिमें परिणम जाते हैं।

जैसे वैद्यके समीप विषनाशक दवा है तो वह वैद्य मरण होने योग्य विषका भक्षण करता हुआ भी मरता नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टि पूर्वकर्मप्रयोगसे विषयभोग भोगता हुआ भी कर्मसे बंधता नहीं।

लोकमें प्रसिद्ध है कि कोई स्त्रीको भोगे वह पुरुष है, वैसे ही जो क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-ममताको भोगे वह सच्चा पुरुष है, परन्तु जिसकी छातीके ऊपर ये क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-ममता चढ़ बैठे हैं वह पुरुष नहीं, सच्ची स्त्री है।

जैसे सुवर्ण कीचड़के मध्य पड़ा हो तो भी वह सुवर्ण कीचड़के साथ एक तन्मय लिप्त होता नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानी सम्यग्दृष्टि सब कर्मोंके मध्य पड़ा हो तो भी वह सब कर्मोंके साथ तन्मय होकर लिपटता नहीं।

जैसे घटके भीतर, बाहर, मध्य में जो आकाश है वह घटकी उत्पत्ति होने पर उत्पन्न होता नहीं तथा घटका नाश होने पर उस आकाशका नाश होता नहीं, वैसे ही स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है वह देहका नाश होने पर विनशता नहीं-मरता नहीं तथा देहके उत्पन्न होने पर उपजता नहीं-जन्मता नहीं।

सहज स्वभाव से ही जो स्व-परको जानता है वही स्वसम्यग्ज्ञान है।

जैसे तुष है वह चावल नहीं, वैसे पांच प्रकारका (औदारिक, वैक्रियिक, आहरक, तैजस और कार्मण) शरीर है वह स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा नहीं।

जैसे बाँसके साथ बाँस परस्पर घिसता है तब सहज स्वभावसे

ही अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही आत्मासे आत्मा तन्मय (होकर) मिलता है तब सहज स्वभावसे ही स्वसम्यग्ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है।

जैसे सूर्योदयके समय कमल स्वयं ही प्रफुल्लित होता है, वैसे ही किसीके अन्तःकरणमें स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यका उदय होने पर उसका मनरूप कमल स्वयं ही प्रफुल्लित होता है। **भावार्थ :-** उसके मनमें बड़ा हर्ष होता है कि अहा हा ! जिसके प्रकाशमें यह लोकालोक प्रगट दिखाई देता है ऐसे (अपूर्व) सूर्यके दर्शनका लाभ हुआ ! अथवा विशेष हर्ष-प्रफुल्लितपना इस प्रकार होता है कि जिस सूर्यके प्रकाशमें यह लोकालोक, जगत-संसार, जन्म- मरण, नाम-अनाम तथा बन्ध-मोक्ष आदिक है वह सूर्य स्वभावसे मैं ही हूँ।

जैसे सेना तो है, परन्तु उसमें सेनापति नहीं है तो वह सेना वृथा है, वैसे ही व्रत-शील, जप-तप-ज्ञान-ध्यान, दया-क्षमा, दान-पूजादिक तो हैं, परन्तु उनमें स्वसम्यग्ज्ञानमयी गुरु नहीं है तो वे व्रत-शील आदि सब वृथा हैं।

जैसे किसी स्त्रीका पति परदेशमें जाकर वहीं मर गया; अब वह स्त्री अपने पतिकी आशा धारण कर भोगादिककी उत्पत्तिके (हेतुरूप) शृंगार-काजल, टीकी, मेंदी, नथनी, आदि शृंगार-करती है वह सब वृथा है। वैसे ही जो निर्ग्रन्थगुरु मोक्ष गये-स्वस्वभाव सम्यग्ज्ञानसे तन्मयी हो गये-वह तो पलटकर अब पीछे आते नहीं; जैसे क्षार समुद्रमें पड़ी नमककी पुतली पलटकर अब पीछे आती नहीं वैसे ही यहाँ समझना; अब चले गये निर्ग्रन्थगुरुकी आशा धारण कर सांसारिक शुभाशुभ भोगादिककी उत्पत्तिके (हेतुरूप) शुभाशुभ क्रिया-कर्म आदिक करना वृथा है।

जैसे किसीने जन्म-समयसे लेकर अब तक गुड़-शक्कर खाई नहीं

और उस गुड़-शक्करकी वार्ता विवरण करता है, वह वृथा है; वैसे ही कोई कभी किसी प्रकार भी स्वस्वरूप स्वयंसिद्ध सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मासे तो तन्मयी हुआ नहीं और उनका गीत, वेद, पुराण, शास्त्र, सूत्र अपने मुखसे पढ़ता है, बोलता है, कहता है, वह सब सुआके समान वृथा है।

जैसे शीलवती स्त्री अपना घर छोड़कर किसी समय पर घर जावे-आवे तो भी फिकर नहीं, वैसे स्वसम्यग्दृष्टि पूर्वकर्मप्रयोगसे (अर्थात् चारित्रविषयक पुरुषार्थहीनतावश) कुछ काल संसारमें भी भ्रमण करे तो भी फिकर नहीं।

जैसे सूर्योदय होने पर ही तत्काल-तत्समय ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही किसीके अन्तःकरणमें स्वसम्यग्ज्ञान सूर्योदय होनेपर ही तत्काल-तत्समय ही मोहान्धकार दूर हो जाता है।

जैसे व्यभीचारिणी स्त्री अपना घर छोड़कर पर घर नहीं जाती-आती तो भी उसकी वासना व्यभिचारी पुरुष तरफ लगी रहती है, वैसे ही जिसे स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभवकी अचलता-अवगाढ़ता-परमावगाढ़ता नहीं हुई है ऐसे मिथ्यादृष्टिकी वासना-भाव-शुभाशुभ संसारकी तरफ लगी रहती है।

जैसे जिस कोठी व दुकानका कामकाज माया-ममता मोह सहित होकर सेठ करता है वैसे ही गुमास्ता भी माया-ममता-मोहसहित होकर करता है, परन्तु उन दोनोंके भीतर परिणामभेद भिन्न-भिन्न है; वैसे ही किसीको गुरुवचनोपदेशसे स्वसम्यग्ज्ञानानुभव होनेयोग्य हो गया, एक तो यह, तथा दूसरा यह कि जो संसारको व लोकालोकको तथा अपने स्वभाव सम्यग्ज्ञानको सूर्य-प्रकाशवत् निश्चयसे एक समझता है-मानता है, ये-दोनों संसारका कामकाज करते हैं, उनमेंसे एक

दोषी है और दूसरा निर्दोष है।

जैसे शुक अपने मुखसे 'राम-राम' बोलता है परन्तु 'स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमें तन्मयपने बीज-वृक्षवत् तथा जल-कल्लोलवत् रमे वह राम है-ऐसे रामको तो जानता नहीं, फिर वह शुक अपने मुखसे 'राम-राम' बोलता है वह वृथा है; वैसे ही मिथ्यादृष्टि स्वयंसिद्ध स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमयी सिद्धको जानता नहीं और अपने मुखसे 'णमो सिद्धाणं' इस प्रकार बोलता है, वह वृथा है। यहाँ विधि- निषेधसे स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु तन्मय नहीं समझना।

जैसे दीपककी ज्योतिके भीतर काला कज्जल कलंक है, वैसे ही स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानदीपकज्योतिके प्रकाशमें कर्मसे तन्मय कर्मकलंक है। यहाँ कोई मिथ्यादृष्टि दृष्टान्तमें तर्क स्थापन करके स्वसम्यग्ज्ञानानुभवको तो नहीं ग्रहण करेगा और शून्यदोष ग्रहण करेगा कि-'दीपककी ज्योतिमें काला कलंकरूप कज्जल है, परन्तु दीपककी ज्योतिके बुझनेके बाद कज्जल भी कहाँ रहता और दीपककी ज्योति भी कहाँ रहती ?' ऐसे तर्क द्वारा शून्योदोषका उद्भावन (ग्रहण) करता है, वह जरूर स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभवसे शून्य होनेसे मिथ्यादृष्टि है।

पांच इन्द्रियोंको तथा पांच इन्द्रियोंके जितने शुभाशुभ विषय व भोगोपभोगादिक हैं उनको सहज स्वभावसे ही जो जानता-देखता है वही केवल ज्ञान है। परन्तु ऐसा नहीं समझना-मानना-कहना कि घ्राणेन्द्रियके विषय-भोगको जानता है वह ज्ञान कुछ और है, जिह्वा इन्द्रिय विषयभोगको जानता है वह ज्ञान कुछ और है, एसे ही कर्णेन्द्रिय तथा स्पर्शनेन्द्रियके विषय-भोगादिकको जानता है वह ज्ञान कुछ और है, तथा तन-मन-धन-वचनादिकका जितना शुभाशुभ

क्रियाकर्म है उसको तथा उसके फलको जानता है वह ज्ञान कुछ और है। ऐसी भेदाभेदकी कल्पना कभी किसी प्रकार भी स्वभाव सम्यग्ज्ञानके साथ तन्मयरूप सम्भव नहीं है।

जैसे सूर्यके प्रकाशमें पड़ी हुई रस्सी रात्रिके समय सर्परूप भासती है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानानुभव बिना जो ज्ञान है वह जगत- संसारवत् भासता है।

जैसे सीपमें चांदीका तथा मृगतृष्णामें जलका भास होता है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमें तन्मयवत् इस संसार-जगतका भास होता है।

जैसे अंधसमूहकूं, खैंचत नयन प्रवीण।
तैसे आतम ज्ञान विन, होय मोहमें लीन।

जैसे आकाशको धूलि-मेघादिक नहीं लगते, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानको पाप-पुण्य तथा पाप-पुण्यका फल नहीं लगता।

इस लोकालोक-जगत-संसारको, स्वसम्यग्ज्ञान है वह सहज स्वभावसे ही जानता है, उसका विधि-निषेध किस प्रकार हो?

जैसे कोई शूरवीर राजा म्लेच्छ आदिकके देशको जीतकर म्लेच्छ आदिकके देशमें ही रहता है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानी क्रोध-मान- माया-लोभ व विषय-भोगादिकको जीतकर उन्हीं विषय-भोगादिकमें रहता है, पर तन्मय-तत्स्वरूप होकर नहीं रहता।

जैसे घटके भीतर, बाहर और मध्यमें आकाश है वह घटको कैसे त्यागे और ग्रहण भी कैसे करे ? वैसे ही इस जगत-संसारके भीतर, बाहर और मध्यमें स्वसम्यग्ज्ञान है, वह क्या त्यागे और क्या ग्रहण करे ?

जैसे समुद्रके ऊपर कल्लोल उपजती है, विनशती है; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी समुद्रमें वह स्वप्नसमयका जगत उपजता है और जाग्रतसमयका जगत विनशता है, जाग्रतसमयका जगत उपजता है और स्वप्नसमयका जगत विनशता है।

जैसे कोई जन्मान्ध रत्न-सुवर्णादिकका आभूषण पहिनता है वह वृथा है, वैसे ही स्वसम्यग्भाव-सम्यग्ज्ञानानुभवकी परमावगाढ़ता बिना व्रत-शील, तप-जप, नियमादिक संपूर्ण वृथा हैं।

जैसे कोई पुरुष वृक्षको पकड़कर अपने मुखसे कहे कि 'मैं बन्ध-मोक्षसे कब भिन्न होऊंगा ?' वैसे ही जो बन्ध-मोक्षसे भिन्न होनेकी इच्छा करता है वह स्वस्वभाव-सम्यग्ज्ञान रहित मूर्ख- मिथ्यादृष्टि है। भावाभाव विकार है वह अपने-अपने स्वभावसे ही है।

जैसे तोलमें गुंजा (एक वजन) और सुवर्ण बराबर हैं, परन्तु मूल स्वभावमें वे बराबर नहीं; वैसे ही जगत और जगदीश ये दोनों बराबर हैं, परन्तु मूल स्वरूप सम्यग्ज्ञान स्वभावमें वे दोनों बराबर नहीं।

जैसे धुआँ बिना अग्नि शोभती है, वैसे ही भ्रमरूपी धुआँसे रहित स्वसम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु शोभायमान भासती है।

जेस ज्वरके अन्त समय अन्न प्रिय लगता है, वैसे ही शुभाशुभ संसारके अन्त स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभव प्रिय लगता है।

जैसे कुकर्दम राजा स्व-वर्गको त्यागकर तथा परवर्गसे मिश्रित होकर मरण आदि दुःखको प्राप्त हुआ, वैसे ही कोई स्वस्वभाव सम्यग्ज्ञानको छोड़कर परस्वभाव परवर्गसे आपको तन्मयीवत् समझता है-मानता है वह जन्म-मरणादि संसारके दुःख भोगता है।

'जैसे महीमण्डलमें नदीकौ प्रवाह एक
ताहीमैं अनेक भांत नीरकी ढरन है,

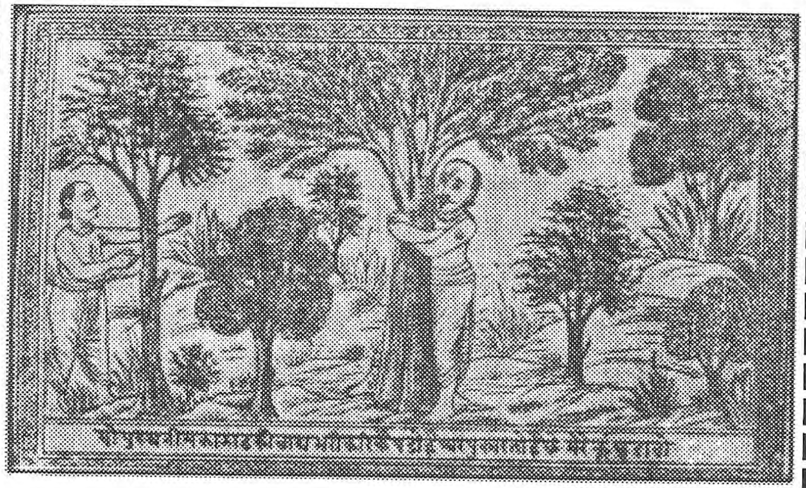

यह पुरुष वृक्षको बाथ भरकर खड़ा है और पुकारता है कि मुझे छुड़ाओ !

पृष्ठ - ७५

पत्थरकौ जोर तहाँ धारकी मरोड होय
कंकरकी खानि तहाँ झागकी झरन है।

पौनकी झकोर तहाँ चंचल तरंग उठै
भूमिकी नीचान तहाँ भौंरकी परनि है,'

ऐसे ही एक-स्वस्वरूप-सम्यग्ज्ञानमयी आत्मा है तथा अनंतरसमयी पुद्‌गल है, उन दोनोंका पुष्प-सुगन्धवत् तथा घट-आकाशवत् संयोग होने पर विभावकी भरपूरता है।

स्वसम्यग्ज्ञानानुभव होनेके बाद भी कुछ काल तक पूर्वकर्मप्रयोगसे सम्यग्दृष्टि संसारमें भ्रमण करता है। किस प्रकार ? जैसे कुम्हारका चक्र, दण्ड और कुम्हार आदिके प्रसंगसे परिभ्रमण करता है परन्तु दण्ड और कुम्हार आदिका प्रसंग भिन्न होने के बाद भी थोड़े काल तक वह चक्र परिभ्रमण करता रहता है वैसे।

जैसे पर जो तन-मन-धन-वचनादिक हैं उनको और उनके शुभाशुभ-व्यवहार-क्रियाकर्म-फलको जानता है वैसे ही इनसे पलटकर स्वयंको इस प्रकार जाने कि इन तन-मन-धन-वचनादिकको तथा इन तन-मन-धन-वचनादिकका जितना कोई शुभाशुभ व्यवहार- क्रियाकर्म फल है उसे अपने द्वारा मैं जानता हूँ, पर ये मेरे स्वस्वभाव सम्यग्ज्ञानको जानते नहीं। इस प्रकार स्वयंको जाने। इसी प्रकार कहा भी है।

आप समझकर घर नहीं जानें दूजाको क्या समझावै।
भ्रमण करै संसार जगतमें हृदय हात नहीं आवै।।

तथा

जब तक है अज्ञान तभी तक कुटुम्ब कबीला भाई है।
ज्ञान हुआ तो आतमा आपमें आप समाई है।।

जैसी जैसी घर-कुटुम्ब, बेटाबेटीसे प्रीति-प्रेम है वैसा ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मासे तन्मय अचल प्रीति-प्रेम हो जाय तो सहजमें यत्न किये बिना परिश्रम किये बिना शुभाशुभ संसारसे प्रेमरोग टूट जाय।

जैसे सूर्यके सहज ही अन्धकारका त्याग है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान सूर्यके सजहपने स्वभावसे ही इस भ्रमजालरूप संसारका त्याग है।

जैसे कोई पुरुष स्त्रीको भोगता है, परन्तु आप स्त्रीसे तथा उसके भाव-क्रिया-कर्म-फलसे तन्मय-तत्स्वरूप होकर स्त्रीको नहीं भोगता; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म पुराणपुरुषोत्तम पुरुष है, वह सर्व संसार-भ्रमजाल-माया स्त्रीको भोगता है, परन्तु जैसे अन्धकारसे सूर्य भिन्न है उसके समान संसार-भ्रमजाल-मायासे भिन्न होकर भोगता है, अर्थात् संसार-भ्रमजाल-माया स्त्रीसे तथा उसके भाव-क्रिया-कर्म- फलसे तन्मय-तत्स्वरूप होकर नहीं भोगता। (मात्र ज्ञाता-दृष्टा बना रहता है।)

जैसे स्त्री भी पुरुषको भोग देती है, वह तन्मय होकर नहीं देती; वैसे ही संसार-भ्रमजाल-माया स्त्री है वह स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमय पुराणपुरुषोत्तमको भोग देती है, वह पुरुषसे अलग होकर भोग देती है, तन्मय होकर भोग नहीं देती।

जैसे कज्जलसे काला कलंक तन्मयी है, वैसे ही तन-मन- धन-वचनादिकका शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म व फल है उनसे अज्ञान तन्मयी है।

जैसे स्वच्छ दपर्णमें काले वस्त्रकी प्रतिच्छाया काली तन्मयवत् दिखाई देती है, वह उस दपर्णकी नहीं है, काले वस्त्रकी है और काले वस्त्रसे तन्मयी है; वैसे ही स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावदपर्णमें द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप संसारकी प्रतिच्छाया कर्म-कलंकमय तन्मयी जैसी दिखाई देती है, वह स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी दपर्णकी नहीं, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्ममयी संसार है उसकी है और वह उससे तन्मयी है।

जैसे स्वच्छ दपर्णमें अग्निकी प्रतिच्छाया तन्मयी जैसी दिखाई देती है तो भी उससे वह दपर्ण गरम होता नहीं तथा उसी स्वच्छ दपर्णमें जलकी प्रतिच्छाया तन्मयी जैसी दिखाई देती है तो भी वह दपर्ण उससे शीतल होता नहीं; वैसे ही स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी दपर्णमें रागमय काम-कुशीलादिककी छायारूप भावका भास होने पर भी वह रागमयी होता नहीं तथा वैराग्यरूप शील-व्रतादिकी छायारूप भावका भास होने पर भी वह वैराग्यमय होता नहीं। इस प्रकार स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसे ये राग-द्वेष तन्मय नहीं है।

जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब है वह हाथसे पकड़में आता नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सिद्धपरमेष्ठी द्रव्यकर्म-भावकर्म- नोकर्मादिकके बन्धमें आते नहीं।

जैसे गोमट्ट नामके पर्वतके ऊपर बाहुबली स्वामी राज्य-सम्पदा, धन-धान्य, सुवर्ण-रत्न और वस्त्र आदि बाह्य परिग्रह छोड़कर तथा नग्न-दिगम्बर होकर खड़े-खड़े ध्यानमें ऐसे लीन हुए कि शरीरके ऊपर वज्रपात आदि हों तो भी चलायमान न हों, उनके सर्वांगमें सर्प और वृक्षलता लिपट गई तथा मौन-अचल आदि अवस्था तक पहुँचकर एक वर्ष पर्यन्त खड़े रहे तो भी वे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानानुभवकी परमावगाढ़ताके साथ (निरन्तर) तन्मय न हुए,

कारण कि उनके अन्तःकरणमें सूक्ष्म अनिर्वचनीय ऐसी वासना रही आई कि मैं भरतकी भूमिपर खड़ा हूं। परन्तु जब वे पूर्वोक्त प्रकारकी अवस्थासे सर्वथाप्रकार भिन्न हुए तभी वे स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी परमावगाढ़ताके साथ सूर्य-प्रकाशवत् तन्मय हो गये।

गुरु भ्रमजालरूप संसारसे सहज ही भिन्न कर देता है। जैसे जलकुण्डमें जलके ऊपर तेलबिन्दु तैरता है, वैसे ही लोकालोक जगत-संसारके ऊपर, पंचभूत, पुद्‌गलादिपिण्ड व राग-द्वेषरूप भावनाके ऊपर, तथा काम-क्रोध-कुशीलादि जितना शुभाशुभ-व्यवहार- क्रियाकर्म है और उसका जितना फल है उस सबके ऊपर स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावस्वरूप परमब्रह्म परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी तैरते हैं। वे इस भ्रमजालरूप संसारमें कैसे डूबेंगे और कैसे गुप्त रहेंगे ?

`जो घट कहिये घीवको, घटको रूप न घीव।
त्यों वर्णादिक नामसे, जड़ता लहै न जीव।।

खांडो कहिये कनककौ, कनक-म्यान-संजोग।
न्यारो निरखत म्यानसे, लोह कहै सब लोक।।'

जैसे कोई अग्निसे जलते हुए घरमेंसे निकलकर बाहर सड़क व मार्गके चौराहे पर खड़ा होकर पुकारता है कि `वह वस्तु जलती है, अमुक वस्तु जलती है;' तब उससे कोई कहे कि `तूं तो नहीं जला, नहीं सुलगा ? तूं तो नहीं जलता है, नहीं सुलगता है ?' तब वह कहता है कि `मैं तो नहीं जलता हूं, नहीं सुलगता हूं, तथा मैं तो नहीं जला, नहीं सुलगा, यह घर जलता है सुलगता

है तथा घरके भीतर अमुक-अमुक वस्तु जलती-सुलगती है;' वैसे ही कोई मुमुक्षु गुरुके उपदेशसे इस भ्रमजालरूप संसारसे अलग होकर ऐसे पुकारता है कि `वह मरा, वह मरता है, मैं तो नहीं मरा और न मरता हूं' इत्यादि-कोई मुमुक्षु तो इस प्रकार बोलता है।-तथा जैसे जलते हुए, सुलगते हुए घरमें से कोई निकलकर बाहर सड़कके चौराहे पर अपने मनमें ही यह विचार करता है कि `घर जल गयात, सुलग गया, तथा घरके भीतर शुभाशुभ (अच्छी-बुरी) अमुक-अमुक वस्तु थी वह भी जल गई, सुलग गई; अब किसको क्या कहूं ? यदि कहूं भी तो उन अमुक शुभाशुभ (अच्छी- बुरी) वस्तुओंका लाभ होनेका नहीं इसलिये बोलना वृथा है;' वैसे ही कोई मुमुक्षु गुरुके उपदेशसे भ्रमजालरूप संसारसे, पृथक् होनेके बाद विचारकर देखता है कि `पुद्‌गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल इन पांचमें तो ज्ञानगुण स्वभावसे ही नहीं है और मेरा जो स्वस्वरूप स्वभाव है वह तो अब गुरुकी कृपासे ज्ञानके साथ तन्मयरूप है, इसलिये बोलना वृथा है;' इस प्रकार कोई मुमुक्षु बोलता नहीं है।

जैसे ज्वरके जोरसे, भोजनकी रुचि जाय, वैसे ही जो मोहकर्मके साथ अपने स्वभाव सम्यग्ज्ञानको एक तन्मय समझता है, मानता है, कहता है, ऐसे मिथ्यादृष्टिको स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानानुभवसूचक उपदेश प्रिय नहीं लगता।

जैसे सूर्यके प्रकाशमें अनेक प्रकारकी काली-पीली-सफेद-हरी शुभाशुभ (अच्छी-बुरी), वस्तुओंको, रतन-दीप, चमक-दमक, पाप-अपराध, देना-लेना, दान-पूजा, भोग-योग इत्यादिको देखता है परन्तु सूर्यके प्रकाश और सूर्यको नहीं देखता है तो वह मुर्ख है; वैसे ही स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्यके प्रकाशमें जो यह लोकालोक

जगत-संसार, काम-कुशील, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि दीखता है उसे तो यह मिथ्यादृष्टि देखता है, परन्तु उसे उलट-पलटकर स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य परमात्मा है उसे नहीं देखता है वह मिथ्यादृष्टि ही है।

स्वभावसम्यग्ज्ञान है, उससे जो अन्य वस्तु तन्मय नहीं है उस वस्तुका स्वभावसम्यग्ज्ञानके त्याग है।

मर जावे, सुलग जावे, गल जावे तथा जल जावे इत्यादि अनेक प्रकारके शुभाशुभ कष्ट करते हुए भी स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सिद्धपरमेष्ठीके प्रत्यक्ष अनुभवकी परमावगाढ़ता-अचलताका (जिसे) अखंड लाभ नहीं होवे; सद्गुरु महाराज सहजमें बिना परिश्रमके शुभाशुभ कष्ट न करते हुए भी सदाकाल ज्ञानमयी जागती ज्योतिका तन्मय मेल करा देते हैं। धन्य हैं गुरु !

वेद अर्थात् केवलीकी दिव्यध्वनि तथा शास्त्र अर्थात् महामुनिके वचन, इनसे भी वह स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानमयी सदाकाल जागती ज्योति परब्रह्म प्रत्यक्ष-अनुभवरूप जाननेमें नहीं आता तथा यह सम्यग्ज्ञानमयी सदाकाल जागती ज्योति परमात्मा है वह पांच इन्द्रियाँ और मनसे भी प्रत्यक्ष-अनुभवरूप जाननेमें नहीं आता; परन्तु श्री सद्गुर सहज स्वभावसे ही बिना परिश्रमके सदाकाल जागती ज्योति ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सिद्धपरमेष्ठीकी तन्मयता करा देते हैं। गुरु धन्य हैं !

मनमें बड़ा आश्चर्य होता है ! क्या ? कि पाँच इन्द्रिय और छठे मनसे, केवलीकी दिव्यध्वनिसे तथा वेद, पुराण, शास्त्र और सूत्रके पढ़ने-वाचनेसे तो यह सम्यग्ज्ञानमयी सदाकाल जागती ज्योति जानने-अनुभवमें नहीं आवे, फिर श्रीगुरु उसे कैसे दिखाते होंगे ? कैसे

जना देते होंगे क्या कहते होंगे ? और शिष्य भी कैसे समझता होगा ? अहो ! अहो ! गुरु धन्य हैं ! हाय ! खेद है कि यदि गुरु न होते तो मैं इस भ्रमजालरूप संसारसे भिन्न कैसे होता !

जैसे एकके अंक बिना बिन्दु प्रमाणभूत नहीं है, वैसे ही एक गुरु बिना त्यागीपना, पण्डितपना, योगी-संन्यासीपना और व्रत, शील, दान, पूजादिक शुभाशुभ सब प्रमाणभूत नहीं।

जैसे 'बीज' राख सुख (फल) भोगवे, ज्यों किसान जगमांहि;' वैसे ही जो स्वस्वरूपी सम्यग्ज्ञानमयी सम्यग्दृष्टि है वह आपमें आपमयी अपने स्वभावधर्मको अपना आपमें आपमयी समझकर पूर्वपुण्यप्रयोगसे विषयभोगादिक सुख भोगता है।

जैसे सफेद काष्ठ अग्निकी संगतिसे काले कोयलारूप हो जाता है और बादमें कारणवश पलटकर अग्निको संगति करे तो कोयला जल-सुलगकर सफेद राख हो जाता है; वैसे ही कोई जिव विषय-भोगादिकी संगति कर अशुद्ध हो जाता है, बादमें पलटकर गुरुकी आज्ञानुसार विषय-भोगादिकको अपने स्वभाव-सम्यग्ज्ञानसे भिन्न समझकर पश्चात् विषय-भोगादिसे अतन्मय होकर विषय-भोगकी संगति करे तो वह जीव परम पवित्र शुद्ध हो जाता है। वस्तु स्वभावमें जो यह शुद्धाशुद्ध (भेद) है वह स्यात् अर्थात् कथंचित् प्रकारसे है। स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुसे 'तूं, मैं, वह और यह' ये चार शब्द (विकल्प) तन्मय नहीं हैं।

जैसे कोई सूर्यके प्रकाशमेंसे एक अणु-रेणु उठाकर अन्धकारमें डाल दे तो उससे कुछ सूर्योदय कम होता नहीं, तथा कोई अन्धकारमें से एक अणु-रेणु उठाकर सूर्यके प्रकाशमें डाल दे तो उससे कोई सूर्योदय बढ़ता नहीं; वैसे ही स्वस्वरूप-स्वानुभवगम्य- सम्यग्ज्ञान-

सूर्योदयमेंसे यह अनन्त संसार निकलकर कभी कहीं जाता रहे तो उससे वह सम्यग्ज्ञान-सूर्योदय शून्य या कम होता नहीं; तथा कभी कहींसे यह अनन्त संसार है ऐसा ही दूसरा अनन्त संसार स्वसम्यग्ज्ञान्सूर्योदयमें आ पड़े तो उससे स्वसम्यग्ज्ञान- सूर्योदयकी वृद्धि होती नहीं।

जैसे एक दीपकके बुझ जानेसे सबके अनन्त दीपक बुझते नहीं, वैसे ही एक जीवके मर जानेसे सम्पूर्ण अनन्त जीवोंसे तन्मयी जिनेन्द्र मरते नहीं।

सर्वभाव पदार्थ व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भोग-योग, पाप-पुण्यादि संसार है उससे स्वस्वरूप-स्वानुभवगम्य-सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु तन्मय नहीं है, इसलिये जो स्वस्वरूप ज्ञान है वह सर्व संसार, पाप-पुण्य, भाव-पदार्थादिक जितना शुभाशुभ व्यवहार है उसका निश्चय स्वभावसे ही त्यागी है, अर्थात् जो स्वसम्यग्ज्ञान है उसके परवस्तुका सहज स्वभावसे ही त्याग है, जैसे-`यथा नाम कोऽपि पुरुषः परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति तथा सर्वान् परभावान् ज्ञात्वा विमुंचति ज्ञानी।'

जैसे नाटककी रंगभूमिमें कोई स्वांग धारण कर नाचता है, उसे कोई ज्ञाता पहिचानकर कहे कि `तूं तो अमुक है,' तब वह स्वांग धरनेवाला पुरुष नाटककी रंगभूमिमेंसे निकलकर यथावत् जैसा था वैसा ही बनकर रहता है। वैसे ही इस लोकालोकरूप रंगभूमिमें जीव और अजीव पुण्य - सुगन्धवत् एक होकर चौरासी लाख योनिमें नाचता है, उसे ज्ञाता सद्गुरुने कहा कि `तूं तो जिसमें ज्ञानगुण तन्मयी है वही है; ये मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारकी व स्त्री, पुरुष और नपुसंक आदि सब स्वांग हैं, तू स्वांग नहीं; स्वांगमें और तुझमें

सूर्य और प्रकाशके समान एक तन्मयता नहीं है; तूं इस स्वांगको जानता है, पर यह स्वांग तुझे नहीं जानता; तूं ज्ञानवस्तु है और ये मनुष्यादिक स्वांग हैं वे अज्ञानवस्तु हैं; जैसे सूर्य और अन्धकारका मेल नहीं है, वैसे ही ये मनुष्यादिक स्वांग हैं उनका और तेरा एक मेल नहीं; जैसे सूर्यप्रकाश इस पृथिवीके ऊपर है उसका और पृथिवीका मेल है वैसे ही हे ज्ञानसूर्योदय ! तेरा और इस मनुष्यादिक स्वांगका मेल है; हे ज्ञान देख ! तूं सर्व मायाजालरूप संसार-स्वांगसे व्यतिरेकभिन्न है, श्रवण कर समझ, मैं कहता हूं-अन्तमें दो अक्षर आते हैं, उसके द्वारा तेरा तूं ही स्वानुभव लेना। `कुमति`ज्ञान,' कुअवधि`ज्ञान,' मति`ज्ञान,' श्रुत`ज्ञान,' अवधि`ज्ञान,' मनःपर्यय`ज्ञान,' और केवल`ज्ञान'-इस प्रकार हे `ज्ञान' ! तूं सर्व संसार-स्वांगसे स्वभावसे ही भिन्न है; तूं मनुष्य नहीं, तूं देव नहीं, तूं तिर्यंच नहीं, तूं स्त्री-पुरुष-नपुसंक नहीं, तथा मनुष्यादिक और स्त्री-पुरुष-नपुसंकका जितना शुभाशुभ-व्यवहार-क्रियाकर्म-फल है वह भी तूं नहीं, तूं तो एक निर्मल निर्दोष-निराबाध-शुद्ध परमपवित्र ज्ञान है; जैसे काँचकी हांडीमें दीपक है उसका प्रकाश इस काँचकी हांडीके भीतर तथा बाहर दोनों ओर है वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान दीपिकाका प्रकाश लोकालोकके भीतर तथा बाहर दोनों ओर एक वही है।

जैसे सोनेकी छुरीसे भी कलेजा फट जाता है तथा लोहेकी छुरीसे भी कलेजा फट जाता है, वैसे ही ज्ञानमयी जीवका पापसे भी भला होता नहीं तथा पुण्यसे भी भला होता नहीं।

प्रश्न :- पाप - पुण्य करना कि नहीं करना ?

उत्तर :- जो पाप और पुण्यके साथ अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मयी होकर पाप और पुण्य करता है वह मूर्ख मिथ्यादृष्टि है। तथा जैसे सूर्यसे अन्धकार भिन्न है वैसे ही जो पाप और पुण्यसे भिन्न

होकर पूर्वकर्मप्रयोगसे पाप-पुण्य करता है वह ज्ञानी सम्यग्ज्ञानदृष्टि है।

जैसे वैशाख-जेठ माहमें मध्याह्न समय सूर्यके प्रकाशमें मरुस्थलमें मृग-मरीचिकाका जल दिखाई देता है वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके प्रकाशमें ज्ञानको यह लोकालोक दिखाई देता है।

अभेदमें अनेक भेद अभेदसे तन्मयी हैं। जैसे वृक्ष अभेदरूप है, उससे तन्मयी अनेक भेद-मूल, शाखा, लघु शाखा, फल, पत्र, फलमें अनेक फल, उन अनेक फलोंमें अनेक वृक्ष, इन एक- एक वृक्षमें अनेक छोटे-बड़े शाखा आदि अनन्त भेद हैं; वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी जिनेन्द्र मूलमें अनन्त जीवराशि भेद हैं, वह जिनेन्द्रसे तन्मयी अभेद है।

जैसे गंगा-यमुना आदि नदियाँ समुद्रसे मिली हैं, वैसे ही गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रके साथ तन्मयरूंप मिल जाता है।

जैसे एक सुवर्णमें अनेक संज्ञक कड़ा, मुदरी, कंठी, डोरा, मुहर, कंचन, कनक हेम आदि हैं वे तन्मयवत् हैं। वैसे ही स्वस्वरूप - स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तुमें जिनेन्द्र, शिव, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, नारायण, हरि, हर, महेश्वर, परमेश्वर, ईश्वर, जगन्नाथ और महादेव आदि ये अनन्त नाम तन्मयवत् हैं।

जैसे कोई पुरुष स्त्रीके कपड़े-आभूषण आदि धारण कर अर्थात् सुन्दर देवांगनाके समान बनकर नाटककी रंगभूमिमें नाचने लगा। उस समय नाटक देखनेवाला पुरुष-मंडल कहता है-अहो ! अहो !! `क्या सुन्दर स्त्री है !' सभामंडलीका ऐसा वचन सुनकर स्त्रीका स्वांग लेनेवाला वह पुरुष स्वयं अपने मनमें जानता है-मानता है कि मैं

मूलसे ही स्त्री नहीं; परन्तु इस सभामण्डलके पुरुष मेरा निज स्वभाव-गुण-लक्षण तो जानते नहीं; बिना समझे ही ये मुझे स्त्री कहते हैं-मानते हैं-जानते हैं, वह वृथा है। वैसे ही स्वभाव- सम्यग्ज्ञानमयी-सम्यग्दृष्टि आप अपने अनतःकरणमें यह निश्चय समझता है-मानता है कि ये बाह्य दृष्टिवाले लोक मुझे स्त्री-पुरुष-नपुसंक आदि मानते हैं-जानते हैं-कहते हैं, वह वृथा है; मेरा स्वभाव तो सम्यग्ज्ञान है, वह तो न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक आदि है; कोई भी किंचिन्मात्र स्वांग मेरे स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानके साथ तन्मय नहीं है।

जैसे एक पुरुष तो निर्मल जलसे भरे हुए तालाबके किनारे बैठकर प्रतिदिन इच्छानुसार निर्मल जल पीकर सुखी है तथा दूसरा कोई पुरुष उस तालाबसे भिन्न लाख योजन दूर निर्मल जलसे भरे हुए क्षीर समुद्रके किनारे बैठकर इच्छानुसार निर्मल जल पीकर सुखी है; वैसे ही पूर्वकर्मप्रयोगसे कुछ किंचित् नियत संख्याप्रमाण काल तक संसारमें रहनेवाले सम्यग्दृष्टिका तथा संसारसे भिन्न मोक्ष है उसमें रहनेवाले स्वसम्यग्ज्ञानमयी सिद्धपरमेष्ठीका-इन दोनोंका सुख सम है, समान है।

जैसे दूधसे भरे हुए कलशमें एक नीलमणी रत्नके डालनेसे उस दूधका और निलमणि रत्नका रंग एक ही प्रकारका-नीलमणी रत्नके तेज जैसा-समान ही भासता है, वैसे ही ज्ञान और ज्ञेयका एक प्रकारका भास होता है; परन्तु ज्ञान और अज्ञान कभी किसी प्रकार भी एक तन्मय होते नहीं।

जैसे मिट्टीके घटमें घी भरा हो उस कारण उस घटको (लोक) `घृतघट' कहते हैं; भले कहो, परन्तु मिट्टीका घट मिट्टीमय है, मिट्टीके घड़ेके तथा घीके अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मयता हुई नहीं, होगी

नहीं और है नहीं; वैसे ही ज्ञानमयी जीवके तथा तन-मन- धन-वचनादिक जो अजीव हैं उनके और तन-मन-धन-वचनादिकका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म है उसके परस्पर सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयता हुई नहीं, होगी नहीं और है नहीं।

जैसे लाल लाखके ऊपर लगे हुए लाल रत्नमें लाख और रत्न दोनोंकी लालिमा एकसमान तन्मयवत् दिखाई देती है, तथापि उन दोनोंकी लालिमा भिन्न-भिन्न है; जो सच्चा जौहरी होता है वह इन दोनोंकी लालिमाको भिन्न-भिन्न समझता है-मानता है-कहता है; वैसे ही आकाश अमूर्तिक, निराकार अजीवमय है और स्वसम्यग्ज्ञान अमूर्तिक, निराकार जीवमयी है। इन दोनोंका परस्पर अमूर्ति-अमूर्तिपना तथा निराकार-निराकारपना एक तन्मयवत् मिथ्यादृष्टिको भासता है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिवाला स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव दोनों अमूर्तिकको और दोनों निराकारको भिन्न- भिन्न समझता है-मानता है-कहता है।

परमात्मा स्वसम्यग्ज्ञानमयी है, वह आदि-अन्त पूर्ण स्वभावसंयुक्त है यही परसंयोग-पररूपकल्पना रहित मुक्त है।

प्रश्न :- कैसे ?

उत्तर :- सुनो, जैसे आदिमें पूर्णचिह्न बिन्दु है, वहका वही अन्तमें भी पूर्णचिह्न बिन्दु है। देखो स्वानुभवदृष्टि द्वारा आदि ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० अन्त।

तथा जैसे सूर्य प्रांतःकाल अर्थात् आदिमें है, वही सूर्य सायंकाल अर्थात् अंतमें है; तो मध्याह्न काल नहीं है ? अर्थात् है। वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य सदाकाल है।

जैसे 'जैसौ पीवे पाणी वैसी बोले वाणी,' वैसे ही जिसे गुरुके उपदेश द्वारा अपनेमें आपमय अपने स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी प्राप्तकी प्राप्ति

अचल हुई वह अपने मुखसे ऐसा बोलता है कि स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है वही-सो हम्।

प्रश्न :- ऐसा तो बहुत बाल-गोपाल बोलते हैं ?

उत्तर :- जैसे रात्रिसमय एक श्वान प्रत्यक्ष चोरको देखकर 'भौं-भौं' बोलता है, उसका 'भौं-भौं' शब्द सुनकर शहरके बहुतसे कुत्ते उसके समान ही 'भौं-भौं' बोलते हैं; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानानुभवी ज्ञानीके अपने मुखसे शब्द सुनकर सम्यग्ज्ञानके अनुभवसे रहित मिथ्यादृष्टि भी ऐसा ही बोलता है कि 'हम ही परमात्मा हैं,' पर मिथ्यादृष्टिको यह निश्चय नहीं कि शब्दमें (उक्त प्रकारके शब्दोच्चारमें) और सम्यग्ज्ञानीमें परस्पर सूर्य-अन्धकारके समान अन्तर-भेद है।

तथा जैसे 'जैसो खावे अन्त, तैसौ होवे मन;' वैसे ही किसी मुमुक्षुको गुरुके उपदेश द्वारा स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानानुभवकी प्राप्तकी प्राप्तिकी अचल अवगाढ़ता हुई उसका मन ऐसा हो जाता है कि ऊपरसे तो वह व्यवहार करता है परन्तु भीतर वह स्वप्नसमान भासता है, तथा उसका मन ऐसा हो जाता है कि मेरा मन तो है पर मैं हूं मन नहीं हूं, तथा मनका जितना शुभाशुभ व्यवहार है वह भी मैं नहीं, तथा शुभाशुभ व्यवहारका जितना सुख-दुःखरूप फल है वह भी मैं नहीं; 'मैं' यह एक शब्द है; 'मैं' शब्दको तथा मनादिकको जानता हूं वही-सो हम्; इस स्थल तक मन हो जाता है।

जैसे मलिन मल-मूत्रमें रत्न पड़ा है वह लेने योग्य है; कोई मल-मूत्रके मैलापन और दुर्गन्धसे द्वेष-ग्लानिरूप भावपूर्वक रत्नको नहीं ग्रहण करता वह मूर्ख है; वैसे ही सम्यग्ज्ञान रत्न तन, मन, धन, वचनादिमें पड़ा है; कोई तन, मन, धन, वचनादिकका शुभाशुभ विकार देखकर उसके प्रति ग्लानिभाव धारण कर स्वसम्यग्ज्ञान रत्नको

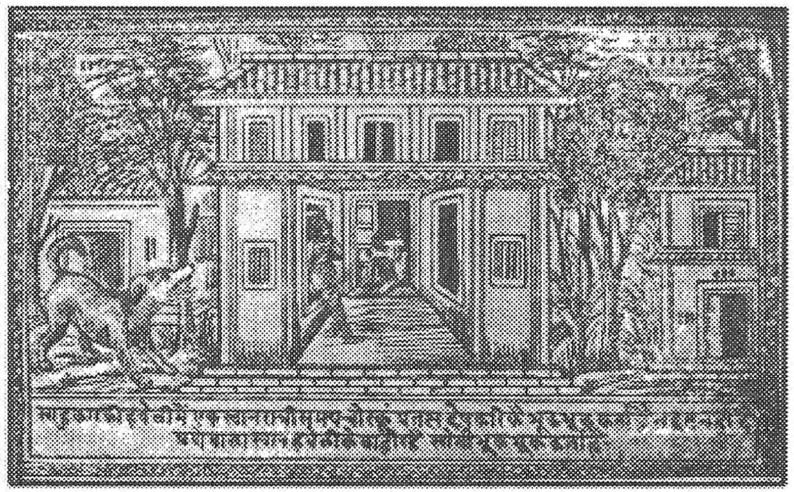

साहूकारकी हवेलीमें एक श्वान रात्रिसमय
चोरको देखकर भौं-भौं करता है।
चोरको नहीं देखनेवाला श्वान
हवेलीके बाहर है वह भी
भौं-भौं करता है।

पृष्ठ - ८९

तन्मयरूप धारण नहीं करता वह मूर्ख मिथ्यादृष्टि है।

जैसे कोईने पूछा कि 'सूर्य कहाँ रहता हैं ?' तो उसके प्रश्नका यह उत्तर है कि 'सूर्य सूर्यके भीतर तन्मय रहता है।' वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान सूर्य है वह निश्चयनयसे स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यमें ही रहता है।

जैसे पुष्पमें सुगन्ध है, तिलमें तेल है तथा दूधमें घी है; वैसे ही इस लोकालोकमें,. तन, मन, धन, वचनमें और तन, मन, धन, वचनका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म है उसमें अतन्मयी सहज स्वभावसे ही स्वसम्यग्ज्ञान है।

हे मुमुक्षुमण्डल ! स्वसम्यग्ज्ञानसे तन्मय होकर देखो तो कौन विधि और कौन निषेध ?

जैसे दर्पणमें काला, पीला, लाल और हरा आदि अनेक रंग-बेरंग विकार दिखाई देते हैं, वे दर्पणके साथ तन्मय नहीं हैं; वैसे ही स्वच्छ स्वसम्यग्ज्ञानमय दर्पणमें ये राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ तथा काम, कुशीलादिके विकार तन्मय हुएके समान दिखाई देते हैं वे स्वच्छ सम्यग्ज्ञानमयी परमात्माके नहीं हैं।

जैसे कोई नौका रंग-रंगीली है वह भी पार उतार देती है और-रंग-रंगीली नौका न होवे वह भी पार उतार देती है; वैसे ही स्वानुभवमय कोई गुरु न्याय, व्याकरण, कोष, अलंकार, काव्य और छंदादिकसे युक्त है वह भी संसार-सागरसे पार उतार देता है, तथा कोई गुरु स्वसम्यग्ज्ञानानुभवी तो है परन्तु न्याय, व्याकरण, कोष, अलंकार, काव्य और छन्दादिकसे रहित है वह भी संसार-सागरसे पार उतार देता है।

जैसे गोरस अपनी दूध, दही, घी, मक्खन आदि पर्यायोंसे भिन्न नहीं है और वे दूध, दही, घी मक्खन आदि हैं वे गोरससे भिन्न

नहीं; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मासे, सुख, स्वसत्ताचेतन, जीव, ज्ञानादिक भिन्न नहीं तथा सुख, स्वसत्ताचेतन, जीव, ज्ञानादिक हैं वे स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मासे भिन्न नहीं।

जैसे धूलिका धोनेवाला न्यारिया सुवर्णकी कणिका नहीं जानता है तो वह धूलिके धोनेका चाहे जितना कष्ट करो, पर उसे कभी भी सुवर्णका लाभ होता नहीं' वैसे ही मुनि, साधु, संन्यासी, भोगी, जोगी, गृहस्थ आदि कोई स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्माको तो जानते नहीं; और व्रत, जप, तप, ध्यान, दान, पूजा आदि बहुत प्रकारके कष्ट करते हैं तो करो, उनको कभी भी स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्माका लाभ होता नहीं।

जिस यति, व्रती, योगी, जंगम-मुनि, परमहंस, भोगी और गृहस्थ आदिके वेषमें स्वसम्यग्ज्ञानानुभव अचल हुआ वह यति, व्रती, योगी, जंगम, मुनि, परमहंस, भोगी और गृहस्थ धन्य है, धन्य है, धन्य है, हजार बार धन्य है।

जैसे अग्नि द्रव्य है, उसमें उष्णता गुण है; जो यह अग्नि उष्णता गुणसे भिन्न हो जाय तो ईंधनको नहीं जला सकती; जो कदाचित् अग्निसे उष्णगुण भिन्न हो जाय तो वह कैसे जलावे? और जो अग्नि भिन्न हुई तो उष्णगुण किसके आश्रय रहे ? निराश्रय हुआ वह भी जलानेकी क्रियासे रहित हो जाय; गुण-गुणीके एक- दूसरेसे पृथक् होने पर वे कार्यकारणताके लिये असमर्थ हैं; यदि दोनोंकी एकता हो तो वे जलानेकी क्रिया करनेमें समर्थ हैं; वैसे ही सद्गुरुके उपदेशसे केवल ज्ञानगुणीकी और उसके देखने- जाननेरूप गुणकी अर्थात् दोनोंकी एकता-तन्मयता हो तब वे सहज स्वभावसे ही आठ कर्मरूपी काष्ठको जलानेकी क्रिया करनेमें समर्थ हैं।

जैसे सूर्य मेघपटलसे आच्छादित हुआ प्रभारहित कहलाता है, परन्तु वह सूर्य अपने स्वभावसे तो उस प्रभासे तीनों कालोंमें भिन्न होता नहीं; वैसे ही स्वसम्यक् केवल ज्ञानमयी सूर्यके कर्म-भ्रम वा द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म स्वरूप बादलपटलसे आच्छादित होने पर वह ज्ञानप्रभासे रहित कहा जाता है, परन्तु वह स्वसम्यक् केवल ज्ञानमयी सूर्य आपमें आपमयी अपने गुणस्वभाव ज्ञानप्रकाशसे तीनों कालोंमें किसी भी प्रकार भिन्न होता नहीं।

जैसे पकती हुई-चुरती हुई हंडीमेंसे चावलके एक दानेके देखनेसे कि यह चुर गया, चुरते हुए सभी चावलोंका निश्चय अनुभव हो जाता है कि वे सभी चावल चुर गये; वैसे ही अनन्त गुणमयी स्वसम्यग्ज्ञान-परमात्माके एक भी गुणका किसीको गुरुके उपदेश द्वारा अचल अनुभव हो गया तो निश्चय समझना कि परमात्माके जितने गुण हैं उन सब गुणोंका उसे अचल अनुभव हो गया।

जैसे घटके पहले कुम्हार है, वैसे ही तन-मन-धन-वचन तथा तन-मन-धन-वचनके जितने शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म उनके पहले आदिनाथ स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है।

जैसे कुम्हार मिट्टी-चक्र आदिसे तन्मय होकर घट-कर्मको नहीं करता है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा तन-मन-धन- वचनादिकसे तन्मयी होकर शुभाशुभ व्यवहार क्रियाकर्म नहीं करता।

द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयके भेदसे नय दो प्रकारके हैं। जैसे सुवर्ण सुवर्णपनेसे न उपजता है और न विनशता है, किन्तु उसीसे तन्मयस्वरूप कड़ा-कंकण आदि पर्यायें विनशती हैं और उपजती हैं, वे भी कथंचित्‌रूपसे; वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा स्वस्वभावसे न उपजता है और न विनशता है, परन्तु उसीसे तन्मयस्वरूप जीव-चेतनादि पर्यायें उपजती हैं और

विनशती हैं, वे भी कथंचित्‌रूपसे।

जैसे समुद्र अपने जलसमूहके द्वारा तो उत्पाद-व्यय अवस्थाको नहीं प्राप्त होता, अपने स्वरूपसे स्थिर रहता है; परन्तु चारों दिशाओंके पवनसे कल्लोलोंका उत्पाद-व्यय होता है, तो भी वह (समुद्र) सदा नित्य टंकोत्कीर्ण जैसा है वैसा ही है; वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानार्णव अर्थात् केवल ज्ञानमयी समुद्र स्वगुण-स्वभाव-समरसजलसमूहसे तो उत्पाद-व्ययरूप अवस्थाको नहीं प्राप्त होता, अपने स्वस्वरूपसे स्थिर रहता है, परन्तु मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकीस्वरूप चारों दिशाओंके पवनसे संकल्प-विकल्प और राग-द्वेषादिरूप कल्लोलोंका उत्पाद और व्यय होता है, तो भी वह सदा नित्य टंकोत्कीर्ण जैसा है वैसा ही है।

जैसे सुनार आभूषण आदि कर्म करता है, परन्तु आभूषण आदि कर्मके साथ तन्मय-तत्स्वरूप होकर नहीं करता, उसीप्रकार आभूषण आदि कर्मके फलको तत्स्वरूप-तन्मय होकर नहीं भोगता; वैसे ही स्वसम्यक्‌स्वानुभव ज्ञानी संसारके सब शुभाशुभ कर्म करता है, परन्तु तन्मय-तत्स्वरूप होकर नहीं करता, उसीप्रकार संसारके शुभाशुभ कर्मके फलसे तत्स्वरूप-तन्मय होकर नहीं भोगता।

अब चेतो -

वस्तुका स्वभाव वचनके साथ तन्मय नहीं, अर्थात् वचनगम्य नहीं। जो लोकालोकको तथा लोकालोकमें अपने-अपने गुणपर्याय सहित अनादिसे अचल जितने द्रव्य हैं उनको जैसे हैं उसीरूपसे एक ही समयमें सहज ही निराबाधपूर्वक जानता-देखता है वही सर्वज्ञदेव है, ऐसे सर्वज्ञदेवके साथ (ऐसे अपने स्वरूपके साथ) तन्मय होकर जो उसीके स्वस्वानुभवज्ञानमें लीन है वह सन्देह- शंकाको नहीं उत्पन्न करता।

जैसे चन्दन वृक्षसे जहरीला विषमय सर्प लिपटा रहता है, तो भी चन्दन अपने सुगन्ध और शीतलपनेरूप गुणस्वभावको छोड़कर जहरीला विषमय-विषमाला होता नहीं; वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टिके पूर्वकर्मप्रयोगसे शुभाशुभ कर्म लग रहा है, तो भी उसके साथ वह तन्मय होता नहीं।

जैसे सूर्यके भीतर सूर्यके साथ अन्धकार तन्मय नहीं, वैसे ही स्वस्वरूपी स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके भीतर अज्ञान तन्मय नहीं।

जैसे जिस नगरमें अज्ञानी राजा है, उसके ऊपर तो केवल ज्ञानी राजा हो सकता है, परन्तु जहाँ केवल ज्ञानी ही राजा है उसके ऊपर कोई भी अधिष्ठाता नहीं सम्भवता, वैसे ही स्वस्वरूप-स्वानुभवगम्य-सम्यग्ज्ञानमयी त्रिलोकनाथ परमात्माके ऊपर उनसे बड़ा कोई है नहीं, कोई होगा नहीं और कोई हुआ नहीं।

जहाँ भ्रम होता है वहाँ ही भ्रम नहीं है;-जैसे सरल मार्गमें सायंकालके समय कोई रस्सीको पड़ा हुआ देखकर ऐसा शंकाशील हुआ की हाय ! सर्प है, तब किसी गुरुने यह कहा कि हे वत्स ! भय मत कर, यह तो रस्सी है, सर्प नहीं।

तन-मन-धन-वचनसे तथा तन-मन-धन-वचनादिकका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म है उससे तत्स्वरूप-तन्मय होनेकी जिसके स्वभावसे ही इच्छा नहीं है वह नर ज्ञानी है।

जो कर्ता द्वारा हो उसका नाम कर्म है। दान, पूजा, व्रत, जप, तप, सामायिक, स्वाध्याय और ध्यान आदि शुभ कर्म हैं तथा पाप, अपराध, चोरी हिंसा और कुशील आदि अशुभ कर्म हैं। अर्थ यह है कि जो शुभाशुभ कर्मका कर्ता है वह शुभाशुभ कर्मके साथ स्वयंको अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मयी समझकर-मानकर करता है वह तो

मिथ्यादृष्टि है तथा इन शुभाशुभ कर्मोंसे स्वयंको सर्वथाप्रकार भिन्न समझकर फिर पूर्वकर्मप्रयोगसे शुभाशुभ कर्म करता है वह स्वसम्यग्दृष्टि है।

जैसे सूर्यके भीतर प्रकाश तन्मय है, वैसे ही जिस वस्तुमें देखने-जाननेका गुण तन्मय है वही वस्तु दर्शन है; इसके सिवाय जो अन्य वस्तुको दर्शन मानता है-समझता है-कहता है वह मूर्ख मिथ्यादृष्टि है।

जहां तक घरमें अन्धकार है वहाँ ही प्रकाश है, कारण कि जो प्रकाश नहीं होता तो अन्धकारकी खबर कैसे होती ? अंधकारको कैसे जानते ? जिसके प्रकाशमें सूर्य और अन्धकार दिखाई देता है वह स्व-परप्रकाशक स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी है।

जैसे पृथिवीके ऊपर जहाँ कुआ खोदा जाय वहाँ ही पानी निकलता है। वैसे ही तन-मन-धन-वचन आदिके भीतर तथा तन- मन-धन-वचन आदिका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म है उसके भीतर आकाशके समान व्यापक स्वसम्यग्ज्ञानमयी ब्रह्म कोई खोजेगा तो वह प्रगट-प्रसिद्ध होता है।

जो इस शरीरपिण्डसे स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा तन्मय होता तो कदाचित् कोई प्रकार भी कोई भी (जीव) नहीं मरता। तथा जो यह लोकालोक-जगत-संसार दिखाई देता है, उसके साथ जो यह स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा तन्मय होता तो हर कोईको दिखाई देता। अहो ! अहो !! अहो !!! ऐसे अपूर्व विचारकी पूर्णता श्री सद्गुरूके चरण-शरण बिना नहीं होती।

जैसे जहां तक पक्षीके दो पंख तन्मय हैं वहाँ तक पक्षी इधर-उधर घूमता है, उड़ता है, बैठता है, तथा जिस समय उस पक्षीके

दोनों पंख खण्डित-निर्मूल हो जायं तब वह पक्षी इधर-उधर घूमने-फिरनेसे रहित होकर जहाँका तहाँ अचल-स्थिर रहता है; वैसे ही जीवके निश्चय-व्यवहारकी (दो पक्षोंकी) तन्मयता है-अवगाढ़ता है वहाँ तक वह चारगति, चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता है, परन्तु जिस समय इस जीवके काललब्धिके पाक द्वारा तथा सद्गुरुके उपदेश द्वारा निश्चय-व्यवहाररूप दोनों पक्ष खण्डित-निर्मूल हो जायं उसी समय वह चार गति, चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करनेसे रहित होकर वहाँका वहाँ अचल स्थिर रहता है।

जैसे उड़द-मूंगकी दो दाल होनेके बाद (दो दल) मिलते नहीं और बोएँ तो उगते नहीं; वैसे ही गुरुप्रसादसे जीव और अजीवकी जहाँ सर्वथा भिन्नता है वहाँ उसकी (जीव और अजीवकी) एकता-तन्मयता नहीं, तथा उन दोनोंकी एकतासे (एकताके अध्यवसानसे) जो संसार उत्पन्न होता था वह अब होनेका नहीं।

जैसे अन्धेके कंधे पर लूला बैठा है; यहाँ विचार कर देखो तो अन्धा चलता है और लूला देखता है; वैसे ही अन्ध मनुष्यके समान यह संसारचक्र है, उसके ऊपर स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञान है वह लूलेके समान संसारचक्रके ऊपर बैठा हुआ केवल देखता है-जानता है। देखना-जानना यह निज धर्म केवल ज्ञानका है।

प्रश्न :- संसारको चक्र संज्ञा कैसे है ?

उत्तर :- जागतेमें यह संसार दिखाई देता है वही पलटकर स्वप्नमें दिखाई देता है, तथा जो संसार स्वप्नमें दिखाई देता है वही संसार पलटकर जागतेमें दिखाई देता है; इस प्रकार संसारचक्र फिरता रहता है।

प्रश्न :- यह संसारचक्र किस भूमिकाके उपर फिरता है ?

उत्तर :- अलोकाकाशमें अणुरेणुवत् यह संसारचक्र आप आपके ही आधारसे जलकल्लोलवत् फिरता है।

प्रश्न :- सुषुप्ति और तुर्या समय संसारचक्र कहाँ फिरता है?

उत्तर :- एक पुरुष सुलोचन है अर्थात् उसके नेत्र तो हैं, परन्तु उसके तन-मन-धन-वचनादिक मूलसे ही नहीं हैं; उसके आगे यह संसार चक्र घूमता हूआ नाचता है; स्वलोचन पुरुष देखता है, पर कहता नहीं।

जैसे कम-अधिक भोजन करनेसे बीमारी-दुःख होता है; वैसे ही जो कोई संसारका विषयभोग कम-अधिक भोगता है-करता है वही दुःखी बीमार होता है, अर्थात् जहाँ बराबरका व्यवहार-क्रियाकर्म है वहाँ विरोघभाव नहीं संभवता।

शब्दातीतका, शब्द सूचक है।

जो वस्तु निरन्तर है उसमें विधि-निषेधका अवकाश कभी भी उससे तन्मय नहीं संभवता।

जैसे वैद्य पुरुष विषका उपभोग करता हुआ भी मरणको नहीं प्राप्त होता, कारण कि उसके पास विषनाशक दूसरी दवा है; वैसे ही जिसके पास स्वसम्यग्ज्ञान तन्मयरूप है वह पूर्वकर्मप्रयोगसे विषयका भोग-उपभोग करता हुआ भी मरता नहीं।

जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होने पर भी अपने सुवर्णपना आदि गुणस्वभावको छोड़ता नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानदृष्टि पूर्वकर्मप्रयोगसे कर्मवेदना-दुःखरूप अग्निमें तप्तायमान होता हुआ भी अपने स्वस्वभाव-सम्यग्ज्ञानादि गुणको छोड़ता नहीं।

जैसे उबलते हुए तेलकी कढ़ाईमें पुड़ी-पुआकी तरह सूर्यका प्रतिबिम्ब जलता है-बलता है, तो भी आकाशमें जो सूर्य है वह जलता नहीं-

मरता नहीं; वैसे ही संसारदशामें स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा मरता है, जन्मता है, तो भी वह स्वस्वभावमें कदाचित् किसी प्रकार भी न मरता है और न जन्मता है।

जिसकी गुरुके उपदेशके स्वभावदृष्टि अचल हो गई वह हजारों बार धन्यवाद योग्य है।

जैसे मदिराके तीव्र अतिभावको जानकर जो इस मदिरा को (कम) भी पीता नहीं तथा अधिक भी पीता नहीं, इस प्रमाण मदिरा पीता हुआ भी वह मदोन्मत्त होता नहीं; वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टि मोहमदिराके तीव्र अतिभावको जानकर इस मोहमदिराको कमी भी ग्रहण करता नहीं तथा अधिक-विशेष भी ग्रहण करता नहीं, इस प्रमाण मोहमदिराको स्वसम्यग्दृष्टि ग्रहण करता हुआ भी स्वसम्यग्ज्ञान- स्वभावको छोड़ मोहमदिराके साथ अग्नि-उष्णतावत् एक तन्मय होता नहीं।

जैसे वृक्षमें लगा हुआ फल एक बार परिपक्व होकर गिर जाय तो वह फल फिरसे पलटकर उस वृक्षमें लगता नहीं; वैसे ही कोई जीव काल पाकर गुरुके उपदेश द्वारा अपना आपमें आपमय स्वसम्यग्ज्ञानानुभव-अचल-परिपक्व पूर्ण अनुभव होनेसे एक बार संसार-जगतसे भिन्न होनेके बाद फिर पलटकर संसार-जगतसे तन्मय होता नहीं।

अन्य भी तीन दृष्टान्तों द्वारा स्वसम्यग्ज्ञानानुभव लेना। १-जैसे दहीमेंसे मक्खन-धृत भिन्न होनेके बाद पलटकर दहीमें मिलता नहीं। २-वृक्षकी जड़ उखड़ जानेके बाद कुछ काल तक फल-फूल- पत्ते हरे रहते हैं, परन्तु पाँच-दस दिनमें वृक्ष स्वयं ही सूख जाता है। ३-चनी तथा चना भूंज देनेके बाद बोने पर वे उगते नहीं, और खानेमें स्वादिष्ट लगते हैं। तथा तिलमेंसे तेलके निकल जानेके बाद फिर पलटकर वह तिलमें मिलता नहीं। इत्यादि।

जैसे समुद्र बहुतसे रत्न आदि अनेक वस्तुओंसे भरा होता है, वह एक जलसे भरा है तो भी उसमें निर्मल छोटी-बड़ी अनेक लहरें-कल्लोलें उठती है, वे सब एक जलरूप ही हैं; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी समुद्र रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न आदि अनेक शुभ, अशुभ और शुद्ध आदि वस्तुओंसे भरा हुआ है, वह एक समरस-जलसे भरा है तो भी उसमें निर्मल कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुवधिज्ञान तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान आदि छोटी- बड़ी अनेक लहरें कल्लोलें उठती हैं, वे सब एक स्वसम्यग्ज्ञानमयी स्वसमरसजल-नीर ही हैं।

जैसे लोद और फिटकरीकी पुट दिये बिना मजीठके रंगमें वस्त्र चिरकाल तक भींगा भी रहे तो भी वह सर्वथा लाल नहीं होता, वैसे ही जीव संसारमें चिरकालसे है तो भी वह सर्वथा कदाचित् कोई प्रकार भी अपने जीवस्वभावको छोड़ अजीवके साथ एक-तन्मय नहीं होता।

जैसे निश्चयसे सुवर्ण कीचड़के मध्य पड़ा हुआ होने पर भी वह कीचड़के साथ तन्मय-लिप्त होता नहीं, उसमें तन्मयरूपसे काई (कीट) लगती नहीं। वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टि जीव निश्चयसे संसाररूपी कीचड़के बीच पड़ा हुआ होने पर भी उससे राग-द्वेषरूपी कीट तन्मय-लिप्त होता नहीं।

जैसे शंख श्वेत स्वभाववाला है, वह सचित्त-अचित्त और मिश्र अनेक प्रकारके द्रव्योंका भक्षण करता है, तो भी वे द्रव्य उसके श्वेत स्वभावको काला करनेमें समर्थ होते नहीं; वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टिका स्वसम्यग्ज्ञानमयी विशुद्ध स्वभाव है वह सचित्त, अचित्त, मिश्र अनेक प्रकारके द्रव्योंका भोग-उपभोग करता हुआ भी वे द्रव्य उसके स्वसम्यग्ज्ञानमयी विशुद्ध

स्वभावको अजीव-अचेतन- अज्ञानमयी भाव करनेमें समर्थ होते नहीं।

जैसे हजारों मन कांचखण्डमें पड़ा हुआ एक असली रत्न अपने रत्नस्वभाव-गुण-लक्षणादिकको छोड़कर उस कांचखण्डके समान होता नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टि अनन्त अज्ञानमयी संसारमें पड़ा हुआ होने पर भी अपने स्वसम्यग्ज्ञान-स्वभावको छोड़कर अज्ञानमय संसारके साथ तन्मय-तत्स्वरूप होता नहीं।

जैसे मिले हुए दूध और जलमेंसे हंस जलको छोड़कर दूधको ग्रहण करता है, वैसे ही दूध और जलकी तरह संसार और स्वसम्यग्ज्ञानके मिले हुए होने पर भी उनमेंसे स्वसम्यग्दृष्टि हंस अज्ञानमयी संसारको छोड़कर स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावको ग्रहण करता है।

जैसे हाथीके मस्तकमें मांस और मोती दोनों मिले हुए हैं उनमेंसे कागपक्षी तो मोतीको छोड़कर मांसको ग्रहण करता है तथा हंसपक्षी मांसको छोड़कर मोती ग्रहण करता है। वैसे ही मिथ्यादृष्टि तो स्वसम्यग्ज्ञानगुणको छोड़कर अज्ञानको ग्रहण करता है और स्वसम्यग्दृष्टि अज्ञान-अवगुणको छोड़कर स्वसम्यग्ज्ञानगुणको ग्रहण करता है।

जैसे परवस्तुके साथ तन्मय होकर जो परवस्तुको ग्रहण करता है वह निश्चय तस्कर-चोर है और वह जहाँ-तहाँ शंकासहित भ्रमण करता है, तथा जो आपमयी अपने ही धनको ग्रहण करता है वह सच्चा-सत्य-निश्चय साहूकार है, वह जहाँ-तहाँ शंकारहित बेफिक्र भ्रमण करता है। वैसे ही जो मिथ्यादृष्टि है वह तो तस्कर-चोरकी तरह शंकासहित चारगति और चौरासी लाख योनिरूप संसारमें भ्रमण करता है तथा जो स्वसम्यग्दृष्टि है वह, जैसे कुम्हारके चक्रके ऊपर अचल

बैठी हुई मक्खी परिभ्रमण करती है उसी प्रकार सच्चे साहूकारके समान चारगति और चौरासी लाख योनिरूप संसारमें (-उसके सम्यग्दृष्टियोग्य यथासंभव भागमें) निःशंक बेफिक्र भ्रमण करता है।

[१] जैसे दस मनुष्य नदीसे पार उतरे। उनमेंसे प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्योंकी गिनती कर नौ गिनता है और स्वयंको भूलकर 'एक मनुष्य नहीं' ऐसा (कहकर) रोता है, वैसे ही अज्ञानीजन परको गिनते हैं-जानते हैं, पर स्वयंको भूल रहे हैं तब तक दुःखी ही हैं।

जैसे एक पुरुष नदीके तट पर खड़ा रहकर तीव्र वेगसे बहते हुए जलको एकाग्र ध्यानपूर्वक देखता था, उससे उसे ऐसी भ्रान्ति हुई कि 'मैं भी बहा जा रहा हूं;' इससे दुःखी होकर पुकारते हुए उससे दयामूर्ति सद्गुरुने कहा कि 'तूं दुःखी मत हो, तूं नहीं बह रहा है, यह तो नदीका जल बह रहा है; अब तूं इस दुःखसे सर्वथाप्रकार छुटकारा पानेके लिये सर्वथाप्रकार बहते हुए नदीके पानीको मत देख, तूं अपनी तरफ देख;' तब गुरुकी आज्ञाको प्रमाण मानकर भ्रान्तिमें बहता हुआ वह पुरुष बहते हुए नदीके पानीको देखना छोड़कर अपनी स्वयंकी ही तरफ देखकर तथा अपनेको अचल-नहीं बहता हुआ-समझकर बहुत खुशी-आनन्दित हुआ और गुरुके चरणोंमें 'नमोऽस्तु' कर बहुत कहा कि 'हे गुरुजी ! मैं बहा जाता था, आपने मुझे बचा लिया;' वैसे ही श्रीगुरु संसारमें बहते हुएको बचा लेता है। सारांश यह है कि हे मुमुक्षुजन ! बहते हुए भ्रमजालरूप संसारसे बचनेकी तुम्हारी इच्छा है तो इस भ्रमजालरूप संसारको देखनेके लिये तो तुम जन्मान्धवत् बन जाओ तथा तुम्हारा

१ - यह दृष्टान्त और दृष्टान्ति अमरावतीसे मुद्रित प्रति पृष्ठ ७० में नहीं है।

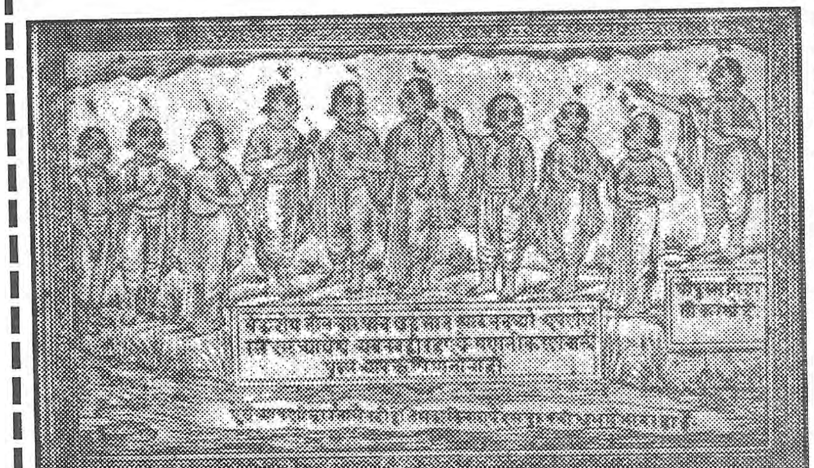

दस पुरुष नदी पार उतरे। नदी किनारे खड़े होकर गिनती करते हैं - एक दो तीन चार पाँच छह सात आठ नौ..... अरे, अपने घरसे तो दस आये थे अब नौ ही रह गये ! गिनती करनेवाला पुरुष अपनेको नहीं गिनता। इसप्रकार अपनी मूर्खतासे नदी किनारे खड़े हुए वे दस पुरुष भ्रममें भरम रहे हैं।

पृष्ठ - १०२

तुमसे तन्मयी जो स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव है उसे देखनेके लिये तुम हजारों सूर्योंके समान अचल हो जाओ।

जैसे रसोईघरमें आटा, दाल, चावल, घी, शक्कर, नमक, मिरच, बर्तन, लकड़ी और ईंधन आदि भोजनकी सामग्री तथा रसोइया आदि सब हैं, परन्तु अग्नि बिना यह चावल आदि सब सामग्री कच्चा है; वैसे ही सिद्ध परमेष्ठीका स्वस्वभाव सम्यग्ज्ञानरूपी अग्निके बिना यह मुनि-त्यागी-व्रती-क्षुल्लक-ब्रह्मचारिपना, दान, पुण्य, पूजा, पाठ, शास्त्राध्ययन, ध्यान, धारणा, उपदेश देना-लेना, तीर्थयात्रा, जप, तप, शुभाशुभ व्यवहार, शुभाशुभ व्यवहारका क्रियाकर्म तथा उसका शुभाशुभ फल आदि सर्व कच्चा है-वृथा है-मिथ्या है। यदि पूर्वमें कहे गये साधनोंका कोई फल है तो मात्र स्वर्ग और नरक है। परन्तु ये स्वर्ग और नरक तो रहटघटीयन्त्रके समान हैं।

ज्ञान संसार-सागरके भीतर और बाहर है, परन्तु जैसा यह संसार है वैसा ज्ञान नहीं।

जैसे चकमक पत्थरमें अग्नि है, वह नहीं दिखाई देती तो भी अग्नि है; वैसे ही संसार-जगतमें स्वसम्यग्ज्ञान प्रसिद्ध है, वह दिखाई नहीं देता तो भी स्वसम्यग्ज्ञान प्रसिद्ध ही है।

जैसे मूर्ख लोक किसी नय-न्यायके द्वारा कहता है कि अग्नि जलती है-बलती है, परन्तु पूर्णदृष्टिसे देखिये तो अग्नि न जलती है और न बलती है; वैसे ही असत्य व्यवहारके द्वारा देखिये तो स्वयं ज्ञानमयी जीव मरता है, जन्मता है, परन्तु निश्चयसे सत्य जीवस्वभावमें देखिये तो न जीव मरता है और न जीव जन्मता है।

जैसे हम खूब चौकस ठीक यह निश्चय कर चुके कि सूर्य के सन्मुख अन्धकार नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके सन्मुख

अज्ञानरूप अन्धकार नहीं।

जैसे सूर्यके और अन्धकारके एक-तन्मयरूप मेल नहीं, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके और अज्ञानमयी अन्धकारके परस्पर एक-तन्मयरूप मेल नहीं। ऐसा न्याय है कि जो जिससे भिन्न है वह उससे भिन्न ही है।

जैसे सूर्य प्रसिद्ध है, उसीके प्रकाशमें घट, पट और मठ आदि प्रसिद्ध हैं; वैसे ही स्वयं सम्यग्ज्ञानमयी सूर्य प्रसिद्ध है, उसीके प्रकाशमें यह लोकालोक-जगत-संसार प्रसिद्ध है।

यह-तन-मन-धन-वचनादिक,-तन-मन-धन-वचनादिकका जितना शुभाशुभ भावकर्म-क्रियादिक है वह तथा उसका फल ये सब स्वस्वरूप-सम्यग्ज्ञानको जानता नहीं।

स्वसम्यग्ज्ञानका और लोकालोक-जगत-संसारका तो मेल ऐसा है जैसा कि फूल-सुगन्धका-दूध-घीका तथा तिल-तेलका है। और यह लोकालोक-जगत-संसार है उसका तथा जो स्वयं सम्यग्ज्ञान है उसका परस्पर अन्तर-भेद ऐसा है कि जैसा सूर्य-अन्धकारका परस्पर अन्तर-भेद है।

जैसा जहाँ तक समुद्र है वहाँ तक कल्लोल-लहर चलती है; वैसे ही जहाँ तक स्वसम्यग्ज्ञानार्णव है वहां तक दान, पुण्य, पूजा, व्रत, शील, जप, तप और ध्यानादिककी तथा काम, कुशील, चोरी, धन, परिग्रह, भोग और विलासकी इच्छा-वांछारूप लहर-कल्लोल चलती है।

जैसे कमल जलमें ही उत्पन्न हुआ है और जलमें ही रहता है, परन्तु जलसे लिप्त-तन्मय नहीं होता; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सम्यग्दृष्टि इस लोकालोक-जगत-संसारमें ही उत्पन्न हुआ है और इसी लोकाकोक-जगत-संसारमें ही रहता है, परन्तु इस संसार- जगत-

लोकालोकसे लिप्त-तन्मय नहीं होता।

जैसे नदी समुद्रसे भिन्न नहीं, वैसे ही जिस वस्तुमें ज्ञानगुण है वह जीव जिनेन्द्रसे भिन्न नहीं।

जैसे सुवर्णकी वस्तु सुवर्णमयी ही है तथा लोहेकी वस्तु लोहमयी ही है, वैसे ही स्वयं ज्ञानमयी जीववस्तु ज्ञानमयी ही है तथा अज्ञानमयी अजीववस्तु अज्ञानमयी ही है।

जैसे मृगमरीचिकाका जल दिखाई देता है, वह नहीं दिखाई दियेके समान मिथ्या है; वैसे ही जगत-संसार दिखाई देता है, वह स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानसे तन्मय होकर स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञानकी तरफ देखने पर मिथ्या है।

जैसे मृगजलसे किसीकी तृषा उपशान्त होती नहीं, वस्त्र गीला होता नहीं, वैसे ही स्वयं स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यका भला-बुरा इस मृगमरीचिकाके जलसे भरे हुए संसार-जगतसे होता नहीं।

जैसे जो जहाँका वासी हो वहाँके मरमको वह जाने, वैसे ही जो स्वसम्यग्ज्ञानमें तन्मय होकर रहता है वह स्वसम्यग्ज्ञानके मरमको जानता है।

जैसे जिस हंडीमे खानेको मिले उसे फोड़ना, तोड़ना, बिगाड़ना योग्य नहीं है, वैसे ही इस लोकालोक-जगत-संसारमें जिसे स्वस्वभाव सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हुई ऐसे संसारको बिगाड़ना योग्य नहीं।

जैसे पूर्ण जलसे भरा हुआ घड़ा शब्द करता नहीं, वैसे ही परिपूर्ण स्वस्वभाव-समरसजलसे तन्मयी स्वयं स्वसम्यग्ज्ञान है वह शब्दके साथ तन्मय होकर बोलता नहीं।

जैसे जहाँ पर्यन्त मण्डप है वहाँ पर्यन्त बेल विस्तीर्ण हो रही है, वहाँ ऐसा नहीं समझना कि बलमें स्वयं विस्तीर्ण होनेकी शक्ति नहीं है; वैसे ही स्वस्वरूपी स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परमात्माका

ज्ञान लोकालोक पर्यन्त विस्तीर्ण होरहा है, वहाँ ऐसा नहीं समझना कि इस ज्ञानमयी परमात्मामें मात्र इतना ही ज्ञान है। अर्थात् जैसा यह लोकालोक है ऐसे ही दूसरे हजारों-लाखों लोकालोक हों तो वह सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा एक ही समयमात्र कालमें निराबाधरूपसे जाने। परन्तु इस लोकालोकके सिवाय दूसरा ज्ञेय कोई है ही नहीं।

भावार्थ :- जाने किसे ? जानता ही है वह क्या जाने ? यह लोकालोक तो उस स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्माके ज्ञानप्रकाशके भीतर अणु-रेणुवत् न जाने किधर कहाँ पड़ा है।

जैसे स्वप्नकी मायाको छोड़ना क्या और ग्रहण कैसे करना ? वैसे ही जो सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है वह इस अज्ञानमयी लोकालोक-जगत-संसारको छोड़कर कहाँ पटके-कहाँ डाले ? तथा ग्रहण कर कहाँ रक्खे-कहाँ धरे ?

जैसे कांचकी हंडीमें दीपक भीतर-बाहर प्रकाशरूप है, वैसे ही किसी जीवको गुरुके उदपेश द्वारा स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञान शरीरके भीतर-बाहर प्रसिद्ध होवे तो वह जीव हजार बार धन्यवाद योग्य है।

प्रश्न :- स्वसम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्माका अचल अनुभव कैसे हो ?

उत्तर :- हे शिष्य ! इस भवनमें तूं उच्च स्वरसे ऐसे आलाप कर कि 'तूं ही।' तब शिष्यने गुरुकी आज्ञानुसार उस भवन-मन्दिरमें उच्च स्वरसे कहा कि 'तूं ही।' तब उसी समय पलटकर उस शिष्यके कर्णद्वारा होकर अन्तःकरणमें वहीकी वही प्रतिध्वनि पहुंची कि 'तूं ही।' तब उस शिष्यने प्रतिध्वनि सुनकर ऐसा निश्चय किया कि स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा है वही 'सो हम्।'

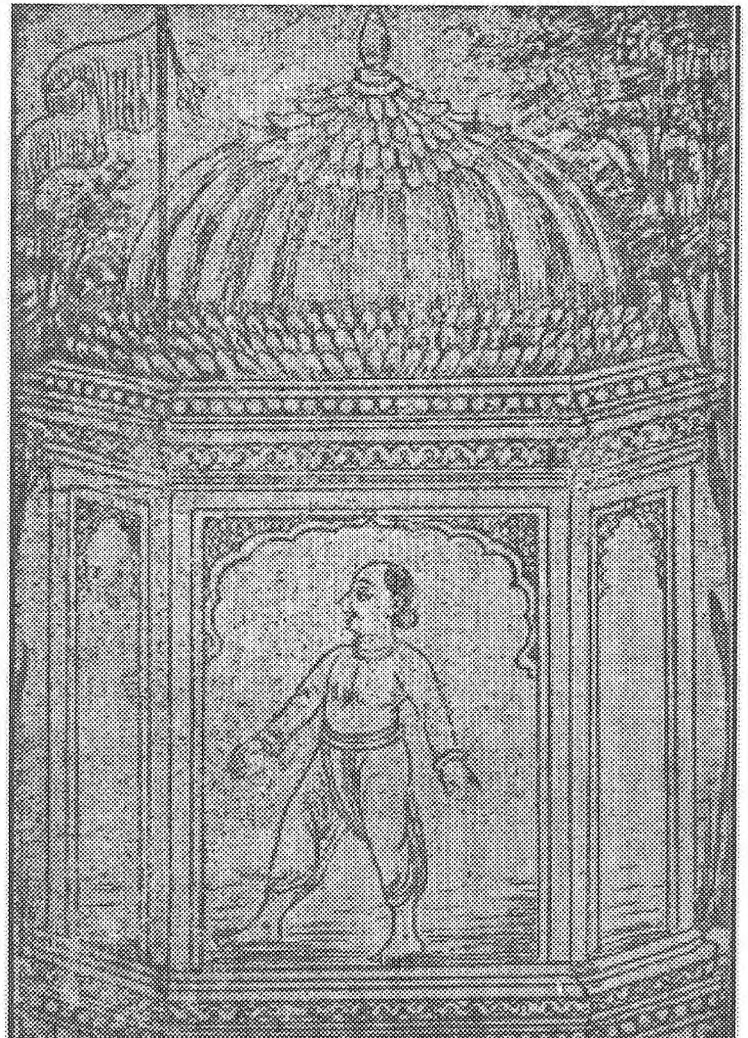

आवाज - `तूं ही।' प्रतिआवाज - `तूं ही।'

पृष्ठ - १०७

स्वसम्यग्ज्ञानानुभव सुनो। जैसे कोई पुरुष पानीसे भरे हुए घटमें सूर्यके प्रतिबिम्बको देखकर संतुष्ट था, उससे यथार्थ सूर्यके जाननेवाले पुरुषने कहा कि तूं ऊपर आकाशमें सूर्य है उसे देख, तब वह पुरुष घटमें सूर्यको देखना छोड़कर ऊपर आकाशमें देखने लगा; तब यथार्थ सूर्यको देखकर उसने अपने अन्तःकरणमें विचार किया कि जैसा सूर्य ऊपर आकाशमें दिखाई देता है वैसा ही घटमें दिखाई देता है-जैसा यहाँ, वैसा वहाँ तथा जैसा वहां, वैसा यहां; अथवा न यहां, न वहां; अर्थात् जैसा है वैसा, जहांका तहां; वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्य है, वह तो जैसा है वैसा, जहांकातहां सानुभवगम्य है। वह जो है उसे नय, न्याय और शब्दसे तन्मय होरहे पण्डित उस स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्माकी अनेक प्रकारसे कल्पना करते हैं, वह वृथा है।

जैसे किसीका एक प्रिय पुत्र बारह वर्ष बाद परदेशसे आया, आते ही माता-पिता, स्वजन आदिसे मिला, उसका आनन्द हुआ; परन्तु बादमें वह आनन्द रहता नहीं; आनन्दका हेतु परदेशसे आया हुआ वह पुत्र तो विद्यमान है, परन्तु प्रथम मिलापके समय जो प्रथम आनन्द हुआ था वैसा आनन्द अब नहीं है; यहाँ प्रथम आनन्द सम्भवता है; उसी आनन्दसे सर्वानन्दरूप है; वैसे ही स्वयंसिद्ध स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा परमानन्दमयी प्रथम है; उसीसे भोगानन्द, जोगानन्द, धर्मानन्द, विषयानन्द, हिंसानन्द और दयानन्द आदि जितने आनन्द शब्द हैं वे सब स्वसम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा परमानन्दके सूचक हैं।

जैसे अंधेरी कुटीमें बैठा हुआ पुरुष उसी कुटीमेंसे होकर बाहर मनुष्य, पशु, पक्षी, बैल और घोड़ा आदि पर पदार्थोंको जानता है तथा स्वयं आपको भी जानता है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सम्यग्दृष्टि स्वयं देहरूपी अंध-कुटीमें बैठकर स्व-परको जानता है।

जैसा बीज वैसा उसका फल।

जैसे जो नेत्रसे देखता है परन्तु नेत्रको नहीं देखता है, वह स्यात् अन्धेके समान है; वैसे ही जो ज्ञानसे जानता है परन्तु ज्ञानको नहीं जानता है, वह स्यात् अज्ञानके समान है।

जैसे नट नाना प्रकारके स्वांग धरता है, परन्तु स्वयं अपने दिलमें जानता है-मानता है कि यह जैसा स्वांग है वैसा मैं नहीं; वैसे ही जो स्वसम्यग्ज्ञानमयी सम्यग्दृष्टि है वह आपमें आपमयी अपने स्वसम्यग्ज्ञानसे तन्मय है उसे तो न स्वांग मानता है, न समझता है, परन्तु जो स्वस्वभाव-सम्यग्ज्ञानसे तन्मय नहीं है वह सबको ही स्वांग जानता है-मानता है।

जैसे घरमें अग्नि लगनेके पहले कुआं खोदना योग्य है, वैसे ही देहरूपी झोंपड़ीमें काल-अग्नि लगनेके पहले ही श्री सद्गुरुके वचनोपदेश द्वारा इस देहरूपी झोंपड़ीके भीतर, बाहर और मध्यमें जो निरन्तर स्वसम्यग्ज्ञानानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु है उसे तन्मयरूप समझ लेना-मान लेना योग्य है।

जैसे चकवा-चकवी सायंकाल-रात्रिसमय-अलग-अगल हो जाते हैं सो उन्हें कौन द्वेषभावसे अलग-अलग करता है? तथा प्रांतःकाल-सूर्योदयसमय वे चकवा-चकवी परस्पर मिल जाते हैं सो उन्हें कौन प्रीति-रागभावसे मिलाता है ? वैसे ही जीव और अजीवको कौन तो प्रीति-रागभावसे मिलाता है? तथा कौन द्वेषभावसे अलग-अलग करता है ?

जैसे सुवर्णके अनेक भेद-अलंकार होते हैं, उन अनेक भेदको-अलंकारोंको गला दे तो एकमात्र सुवर्ण ही है, वैसे ही एक स्वयंसिद्ध स्वसम्यग्ज्ञान है, उसके कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान आदि अनेक भेद

हैं उन्हें गला दे तो एक केवल स्वयंसिद्ध स्वसम्यग्ज्ञान ही है।

जैसे सूर्यके प्रकाशमें अन्धकार कहां है और सूर्यको निकाल लिया जाय तो प्रतिबिम्ब कहां है ? आत्मज्ञानी जीवके लिये जगत- संसार मृगजलके समान है, परन्तु सूर्य न हो तो मृगजल कहाँ है ? वैसे ही गुरुके उपदेश द्वारा आपमें आपमयी आपको आपमें ही खिंच लेनेके बाद आकार कहाँ है ? वैसे ही यह जगत-संसार है सो भ्रम है, भ्रम उड़ गया तो जगत-संसार कहाँ है ?

जैसे जल अग्निका संयोग पाकर गरम है; परन्तु वह गरम है नहीं, कारण कि उसी गरम पानीको अग्निके ऊपर डाल दे- पटक दे तो अग्नि उपशम जाती है-बुझ जाती है; वैसे ही जो स्वसम्यग्ज्ञान है वह क्रोधादि अग्निका संयोग पाकर सन्तप्त हो जाता है; परन्तु (वास्तवमें) सन्तप्त होता नहीं, कारण कि उसी स्वसम्यग्ज्ञानको क्रोधादिक अग्निके ऊपर वा जगत-संसारके ऊपर डाल दे-पटक दे तो क्रोधादि अग्नि तथा जगत-संसार उपशान्त हो जाता है।

जैसे सूर्यका प्रकाश और आकाश सर्वत्र है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान सर्व क्षेत्र, काल, भव और भावादिक हैं वहाँ है निश्चयनयसे।

स्वसम्यग्ज्ञानस्वभावमें रात्रि और दिनका भेद सम्भव नहीं है, इसीसे स्वसम्यग्ज्ञानका नाम सदोदय (सदा उदयरूप) सूर्य है।

जैसे बालक लड़का- लड़की बाल्य-अवस्थामें गुड्डा-गुड्डीका खेल खेलते हुए आभासमात्र मैथुनादि-भोगोपभोग करते हैं; परन्तु यौवन-अवस्थाके समय साक्षात् मैथुनादिक-भोगोपभोग वही लड़का- लड़कीको यथार्थमें प्राप्त हो जाता है, तब पहले किये गये गुड्डा-गुड्डीके खेलको असत्य जानकर उन्हें समेटकर एक तरफ रख देते हैं; वैसे ही किसीको गुरुउपदेश द्वारा काललब्धिके पाक द्वारा स्वस्वरूप

स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानस्वभावकी अचलता-परमावगाढ़ता होने योग्य हो चुकी, तो वह पाषाण-काष्ठादिककी मूर्ति जहाँकी तहाँ दूसरे बालक जैसेके लिये रख देता है।

जैसे समुद्रका जल खारा है, परन्तु समुद्रके किनारे कुआं खुदवाया जाय तो मीठा पानी निकलता है, वैसे ही श्रीगुरुका उपदेश पाकर कोई संसाररूपी क्षार समुद्रके तट खोजेगा तो उस स्वसम्यग्ज्ञानरूपी मिष्ट जलका लाभ होगा।

जैसे 'बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जगमाहिं। त्यों चक्री नृप सुख करे, धर्म विसारे नाहीं।' वैसे ही कोई स्वसम्यग्ज्ञानमयी स्वभावबीजको आपके आपमें आपमयी आपके ही पास रखकर पश्चात् संसारका शुभाशुभ फल भोगता है उसको स्वभावधर्म कभी किसी प्रकार भी नष्ट होता नहीं।'

जैसे वृक्षकी जड़में-मूलमें इच्छानुसार जल डालो तो भी समय पाकर फल लगेगा, वैसे ही मिथ्यादृष्टिको यथेष्ट स्वसम्यग्ज्ञानका उपदेश दो तथा साक्षात् सूचक वचन कहो कि 'तूं ही जिनेन्द्रशिव सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसूर्य है'-इस प्रकार ऐसे सूचक वचन कहने पर भी मिथ्यादृष्टिको स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी अचलता-परमावगाढ़ता (स्व) काललब्धिका पाक हुए बिना होती नहीं।

जैसे सूर्य प्रकाश तो करता है, पर अन्धा देखता नहीं तो सूर्यका क्या दोष ? वैसे ही सद्गुरु सम्यग्ज्ञानका उपदेश तो करते हैं पर मिथ्यादृष्टि स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी परमावगाढ़ता नहीं धारण करता, उसमें सद्गुरुका क्या दोष ?

जैसे दीपक अन्य घट-पट आदि वस्तुओंको प्रगट करता नहीं कारण कि वे वस्तुएँ दीपकसे ऐसा कहती नहीं-प्रेरणा करती नहीं

कि हे दीपक ! तुम हमें प्रगट करो; वैसे ही दीपक भी उन घट-पट आदि वस्तुओंसे कहता नहीं-प्रेरणा करता नहीं कि हे घट-पटादि वस्तुओं ! तुम मुझे प्रगट करो। वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान- दीपक है वह तो अन्य संसार व तन-मन-धन-वचनादि वस्तुओंको व तन-मन-धन-वचनादिकका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म है उसको तथा उसके शुभाशुभ फलको प्रगट करता नहीं, कारण कि यह संसार, तन-मन-धन-वचनादिक वस्तु, इनका शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म तथा इनका शुभाशुभ फल ये सब स्वसम्यग्ज्ञानदीपकसे ऐसा कहते नहीं-प्रेरणा करते नहीं कि हे स्वसम्यग्ज्ञानदीपक ! तूं हमें प्रगट कर; वैसे ही यह स्वसम्यग्ज्ञानदीपक भी इस संसारसे, तन-मन-धन-वचनादिक वस्तुओंसे उनका जिनता शुभाशुभ व्यवहार- क्रियाकर्म है उससे और उसका जितना शुभाशुभ फल है उससे ऐसा कहता नहीं-प्रेरणा करता नहीं कि हे संसार, तन-मन-धन- वचनादिक वस्तुओ, तन-मन-धन-वचनादिकका जितना शुभाशुभ व्यवहार - क्रियाकर्म है वह सब, तथा उनका शुभाशुभ फल ! तुम मुझे प्रगट करो।

जैसे बाजीगर अनेक प्रकारका तमाशा-चेष्टा करता है, परन्तु स्वयं अपने दिलमें जानता है कि मैं जो ये तमाशे-चेष्टाएँ करता हूं वैसा मैं मूलस्वभावसे ही नहीं हूँ। वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी सम्यग्दृष्टि संसारके सब शुभाशुभ कर्म-चेष्टा करता है, परन्तु स्वयं अपने दिलमें निश्चयसे जानता है कि मैं जैसा संसारका शुभाशुभ कर्म-चेष्टा करता हूँ वैसा तन्मयी कभी किसी प्रकार भी नहीं हूँ, में जैसा कर्म-चेष्टा करता हूँ वैसा मैं मूलस्वभावसे ही नहीं हूँ।

जैसे बाजीगर मिथ्या-मृगजलके समान आमका वृक्ष लगाता है। उसे देखकर किसीने अपने पुत्रसे कहा-'हे पुत्र ! बाजीगरने जो आम्रवृक्ष लगाया है वह मिथ्या है;' परन्तु वह पुत्रका पिता बाजीगरको

मिथ्या नहीं जानता; वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टि द्रव्यकर्म-भावकर्म- नोकर्मको मिथ्या जानता है, परन्तु जो कर्मके साथ अतन्मय होकर कर्मको करता है उसे मिथ्या नहीं जानता-नहीं मानता-नहीं कहता।

जैसे खड़िया मिट्टी आप स्वयं ही श्वेत है और पर भीत आदिको श्वेत करती है परन्तु स्वयं भीत आदिसे तन्मय होती नहीं। वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञान है वह सर्व संसार आदिको चेतनवत् करके रखता है परन्तु स्वयं संसार आदिसे तन्मय होता नहीं।

जैसे जेलखानेमें बेड़ीसे बंधे हुए चोर आदि भी हैं और उसी जेलखानेमें निर्बंध सिपाही, जमादार तथा फौजदार भी हैं; वैसे ही संसार-कारागृहमें मिथ्यादृष्टि तो कर्मबन्ध सहित है तथा स्वसम्यग्दृष्टि कर्मबन्ध रहित है।

जो दृष्टान्तमें तर्क करता है उसे स्वभावसम्यग्ज्ञानका लाभ होता नहीं।

जैसे शरबतमें मिश्री, इलायची, दूध, कालीमिरच, बादामबीज, केशर और जल मिश्रित अनेक द्रव्य हैं, वे सब अपने-अपने स्वभावगुण-लक्षणमें मग्न हैं, तो भी (उन सबका) एक शरबत नाम है; वैसे ही जीव, पुद्‌गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य यह छह द्रव्यमयी संसार है, उनमेंसे ज्ञानगुण जीवमें है, अन्य पाँच द्रव्यमें नहीं।

जैसे समुद्रमें अनेक नदी-नालोंका जल जाता है, उसमें ऐसा विभाग नहीं कि 'यह जल तो अमुक नदीका है और यह जल अमुक नदीका है;' वैसे ही स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभावसमुद्रमें ऐसा विभाग नहीं कि 'यह ज्ञान तो जैनका है, यह ज्ञान विष्णुका है, यह ज्ञान शिवका है, यह ज्ञान बौद्धका है, यह ज्ञान नैयायिकका है, यह ज्ञान चार्वाकका है, यह ज्ञान पांतजलिका है और यह ज्ञान

सांख्यका है।' इत्यादि विभाग, विधि-निषेध स्वस्वभाव सम्यक्‌ज्ञानार्णवमें सम्भवता नहीं।

जैसे सन्निपातयुक्त कोई पुरुष अपने घरमें सोता है परन्तु भ्रम-भ्रान्तिवश कहता है कि 'मैं अपने घरमें जाता हूँ,' वैसे ही स्वयं ज्ञानमयी जीव अपने ज्ञानमयी स्वभाव-मोक्षसे भिन्न नहीं है तो भी भ्रम-भ्रान्तिवश मोक्षमें जानेकी इच्छा करता है।

अब केवल दृष्टान्तों द्वारा आपमें आपमयी अपने स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव-सूर्यका अचल अनुभव लेना।

केवल दृष्टान्त-संग्रह प्रारम्भः -

नमो ज्ञान - सिद्धान्तकूं नमो ज्ञान शिवरूप।
धर्मदास वन्दन करै देख आतमा - भूप।।

प्रश्न :- स्वसमयग्ज्ञानमयी आत्मा कैसा है और उसे कैसे प्राप्त किया जाय ?

उत्तर :- उसका उत्तर दृष्टान्त द्वारा कहते हैं-यह आत्मा स्वसम्यग्ज्ञानमयी चैतन्यस्वरूप अनन्तधर्मात्मक एक द्रव्य है। वे अनन्त धर्म अनन्त नयगम्य हैं। जो अनन्त नय हैं वे सब श्रुतज्ञानस्वरूप हैं। उस श्रुतज्ञान प्रमाणसे अनन्त धर्मान्तक आत्मा जाना जाता है, इसलिये नयों द्वारा स्वभावसम्यग्ज्ञानवस्तु दिखलाते हैं-

वही आत्मा द्रव्यार्थिकनयसे चिन्मात्र है। दृष्टान्त-जैसे वस्त्र एक है, वैसे ही स्वभावसम्यग्ज्ञानमय आत्मा एक है।

जैसे वस्त्र सूत-तन्तु आदिकी अपेक्षा अनेक है, वैसे ही

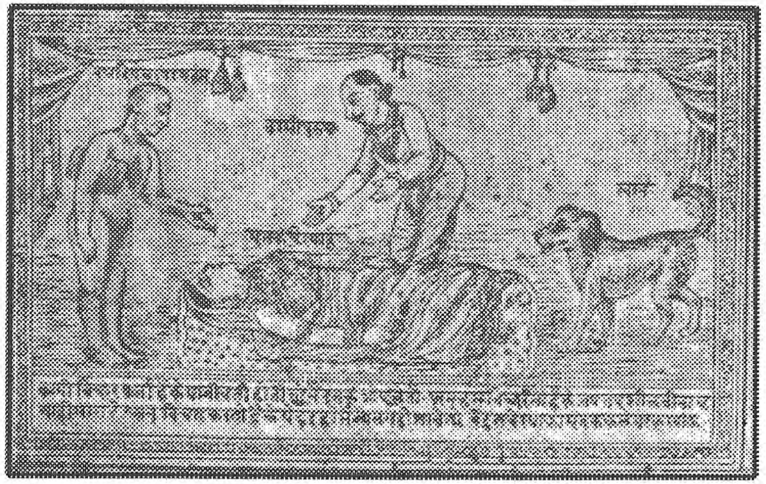

मृतक वेश्याको देखकर कामी पुरुष विचारकरता है कि यह जीवित होती तो मैं इसको भोग लेता। परमहंस विचारता है कि जप, तप, व्रत, शील बिना वृथा ही मर गई ! श्वान विचार करता है कि ये यहाँसे अलग होजायें तो मैं इस वेश्याके मृतकलेवरको खाऊँ।

स्वसम्यग्ज्ञानमयी आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, सत्ता, चेतन और जीवत्व आदिकी अपेक्षा अनेक है।

जैसे लोहमयी बाण अपने द्रव्यक्षेत्रकालभव-भावकी अपेक्षा अस्ति है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी आत्मा आपका आपमें आपमय आप ही द्रव्य, आपमें ही आप रहता है इसलिये आप ही क्षेत्र, आपहीमें आप वर्तता है इसलिये आप ही काल, आप ही आपके स्वभावमें है इसलिये आप ही भव-भावकी अपेक्षा अस्ति है।

जैसे लोहमयी बाण पर द्रव्यक्षेत्रकालभव-भावादिकी अपेक्षा नास्ति है, वैसे ही स्वसम्यग्ज्ञानमयी आत्मा पर द्रव्यक्षेत्रकालभव-भावादिकी अपेक्षा नास्ति है।

जैसे दपर्णमें अपना मुख नहीं देखो तो भी स्वमुख है, तथा दपर्णमें अपना मुख देखो तो भी स्वमुख वैसा ही है। वैसे ही हे स्वसम्यग्ज्ञान ! तूं स्वयंको संसार-जगत, जन्म-मरण, नाम-अनाम, बन्ध-मोक्ष और स्वर्ग-नरकमें नहीं देखे तो भी तूं अनादि-अनन्त निरन्तर सम्यग्ज्ञान ही है, तथा हे स्वसम्यग्ज्ञान ! तूं स्वयंको सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयी तेरा तेरेपनेसे ही भीतर तूं ही स्वयंको देखे तो भी तूं वहका वही अनादि-अनन्त निरन्तर स्वसम्यग्ज्ञान ही है।

जैसे कोई अपने हाथसे अपने ही स्वस्थानमें अपनी ही निज पेटी-तिजोरीमें रत्न रखे, रखकर वह अन्य वृत्तिमें लग जाय, तब वह उस रत्नको भूल भी जाता है, परन्तु जब याद करे तभी वह रत्न उसके अनुभवमें आता है; वैसे ही किसी शिष्यको श्री सद्‌गुरुके वचनोपदेश द्वारा और काललब्धिके पाक द्वारा स्वस्वरूप स्वसम्यग्ज्ञानानुभव होने योग्य था सो हो गया, परन्तु पूर्वकर्मवश वह अन्य वृत्तिमें लग जाय, तब वह स्वसम्यग्ज्ञानानुभवको भूल भी जाता है, परन्तु जब

याद करे तब साक्षात् स्वानुभवमें आता है। इसी विषयमें तीन दृष्टान्त हैं-१-जैसे एक बार चन्द्रको देख लेनेके बाद चन्द्रका अनुभव जाता नहीं,२-एक बार गुड़को खानेके बाद गुड़का अनुभव जाता नहीं,३-तथा एक बार भोग भोगनेके बाद भोगका अनुभव जाता नहीं।

जैसे कोई दपर्णको सदाकाल अपने हाथमें लेकर दपर्णके पिछले भागको बार-बार देखता है इसलिये अपना मुख दिखाई देता नहीं, परन्तु उस दर्पणके पृष्ठ भागको पलटकर स्वच्छ दपर्णमें अपना मुख देखे तो अपना मुख दिखाई दे; वैसे मिथ्यादृष्टि इस संसार तन-मन-धन-वचनकी तरफ और तन-मन-धन-वचनादिका जितना शुभाशुभ व्यवहार-क्रियाकर्म तथा उसका शुभाशुभ फल है उनकी तरफ देखता है इसलिये स्वसम्यग्ज्ञान नहीं दिखाई देता-स्वानुभवमें नहीं आता, परन्तु इस संसार-तन-मन-धन-वचनादिकी तरफ देखना छोड़कर स्वसम्यग्ज्ञानकी तरफ निश्चयसे देखे तो स्वसम्यग्ज्ञान ही दिखाई दे और स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी अचलता-परमावगाढ़ता हो जाय।

लोकालोकको जाननेकी तथा नहीं जाननेकी-इन दोनों कल्पनाओंको सहज स्वभावसे ही जो जानता है वही स्वसम्यग्ज्ञान है।

जैसे हरे रंगकी मेंहदीमें लाल रंग है परन्तु वह दिखाई देता नहीं, पत्थरमें अग्नि है परन्तु वह दिखाई देती नहीं, दूधमें घी है परन्तु वह दिखाई देता नहीं, तिलमें तेल है परन्तु वह दिखााई देता नहीं तथा फूलमें सुगन्ध है परन्तु वह (आंखोंसे) दिखाई देती नहीं; वैसे ही जगतमें स्वसम्यग्ज्ञानमयी जगदीश्वर है परन्तु चर्मनेत्र द्वारा वह दिखाई देता नहीं। पर किसीको सद्गुरुके वचनोपदेश द्वारा तथा काललब्धिके पाक द्वारा स्वभावसम्यग्ज्ञानसे तन्मय (जगदीश्वर) स्वभाव-सम्यग्ज्ञानानुभवमें दिखाई देता है।

जैसे व्याभिचारिणी स्त्री अपने घरका काम-काज करती है, परन्तु उसका चित्त व्यभिचारी पुरुषकी तरफ लगा रहता है; वैसे ही स्वसम्यग्दृष्टि पूर्वकर्मप्रयोगसे सांसारिक काम-काज करता है, परन्तु उसका चित्त स्वसम्यग्ज्ञानमय परमात्माकी तरफ लगा रहता है।

जैसे जिस स्त्रीके मस्तक पर अपना पति है, कदाचित् वह स्त्री पर पुरुषके निमित्तसे गर्भ भी धारण करे तो भी उसे दोष लगता नहीं; वैसे ही कोई पुरुषके मस्तकसे तन्मय स्वरूप मस्तकके ऊपर स्वसम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा है, वह पुरुष कदाचित् कर्मवश दोष भी करे तो उस पुरुषको दोष लगता नहीं। बड़ेकी शरण लेनेका यही फल है।

जैसे मूक पुरुषके मुखमें गुड़का टुकड़ा देकर पश्चात् उस मूक पुरुषसे पूछा कि हे मूक ! गुड़ कैसा मिष्ट है ? यहाँ इस मूक पुरुषको गुड़का मिष्ट अनुभव तो है, परन्तु वह कह सकता नहीं; वैसे ही किसीको गुरुके वचनोपदेश द्वारा स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी अचलता-परमावगाढ़ता होने योग्य थी वह हो चुकी, परन्तु वह कह सकता नहीं।

जैसे हाथीके दांत बाहर देखनेके जुदे हैं तथा भीतर चबाने- खाने के जुदे हैं; वैसे ही जैन, ऋषि, मुनि और आचार्यके रचे हुए सिद्धान्तशास्त्र, सूत्र और पुराणादिक हैं वे तो हाथीके बाहरके दांतोंके समान समझना तथा भीतरका यथार्थ आशय जिसका जो वही जानता है।

बन्धको विलास डाल दीजै पुद्गलपै,
तथा देहीका विकार तुम देह सिर दीजिए।

जो स्वस्वरूप सम्यग्ज्ञान है वह तो तन-मन-धन-वचनादिकसे तन्मय-तत्स्वरूप कदापि नहीं, तथापि श्रीगुरु स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी अचलता-अवगाढ़ता-निश्चयता करा देता है। धन्य हैं, गुरु, सहस्त्रबार धन्य हैं।

जैसे जैन, वैष्णव, बौद्ध और शैव आदि कोई भी हो,जो चोरी करेगा वह बन्धमें पड़ेगा; वैसे ही कोई भी हो, जो कोई श्रीगुरुके वचनोपदेश द्वारा व काललब्धिके पाक द्वारा आपके आपमें आपमयी स्वसम्यग्ज्ञानानुभवकी अचलता-परमावगाढ़ता धारण करेगा वही संसार-भ्रमजालसे भिन्न होकर सदाकाल सुखानुभवमें मग्न रहेगा।

प्रश्न :- आत्मा कैसा है और उसे कैसे प्राप्त किया जाय?

इसका उत्तर दृष्टान्त द्वारा कहते हैं :-

यह आत्मा चेतनस्वरूप अनन्तधर्मात्मक एक द्रव्य है, वे अनन्त धर्म अनन्त नयसे गम्य हैं, अनन्त नय सब श्रुतज्ञान है और यह श्रुतज्ञानप्रमाण द्वारा अनन्तधर्मात्मक आत्मा जाना जाता है। इसलिये नयों द्वारा वस्तुको दिखाते हैं :-

[१] (नय द्वारा आत्मवस्तु विवरण :-)

द्रव्यार्थिकनयसे यही चिन्मात्र है, जैसे वस्त्र एक है।२।

पर्यायार्थिकनयसे यही आत्मा ज्ञान-दर्शनादिरूपसे अनेकरूप है, जैसे वही वस्त्र सूतके तन्तुओं द्वारा अनेक है।२।

यही आत्मा अस्तित्वनयसे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा अस्तित्वरूप है, जैसे लोहमय बाण अपने द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा अस्तित्वरूप है; उसमें लोहा तो द्रव्य है, वह (बाण) धनुष्य और डोरीके मध्य रहता है इससे वह बाणका क्षेत्र है, जो साधनेका समय (संधान-

१ देखो श्री प्रवचनसारकी तत्त्वप्रदीपिका-टीकाका अन्तिम भाग।

दशा) है वह काल है और वह (बाण) निशानेके सन्मुख है वह भाव है,-इस प्रकार अपने चतुष्टयकी अपेक्षा लोहमय बाण अस्तित्वरूप है।३।

नास्तित्वनयसे वही आत्मा पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा नास्तित्वरूप है, जैसे वही लोहमय बाण परचतुष्टयकी अपेक्षा लोहमय नहीं, धनुष और डोरीके मध्य भी नहीं, साधा हुआ नहीं और निशानके सन्मुख नहीं-इस प्रकार वही लोहमय बाण परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्वस्वरूप है। इसप्रकार परचतुष्टयकी अपेक्षा आत्मा नास्तित्वरूप है।४।

वही आत्मा अस्तित्व-नास्तित्वनयसे स्वचतुष्टय-परचतुष्टयकी क्रमपूर्वक विवक्षासे अस्ति-नास्तिरूप है, जैसे वही बाण स्वचतुष्टय- परचतुष्टयकी क्रमपूर्वक विवक्षासे अस्ति-नास्तिरूप होता है।५।

वही आत्मा अवक्तव्यनयसे एक ही कालमें स्वचतुष्टय- परचतुष्टयकी अपेक्षा अवक्तव्य है, जैसे वही बाण (एक ही साथ) स्व-परचतुष्टयकी अपेक्षा अवक्तव्य सिद्ध होता है।६।

वही आत्मा अस्ति-अवक्तव्यनयसे स्वचतुष्टयकी अपेक्षा तथा एक ही कालमें स्व-परचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति-अवक्तव्यरूप, बाणके दृष्टान्त द्वारा साध लेना।७।

नास्ति-अवक्तव्यनयसे वही आत्मा परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा और एक ही कालमें स्व-परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति-अवक्तव्यरूप, बाणके दृष्टान्तसे साध लेना।८।

अस्ति-नास्ति-अवक्तव्यनयसे वही आत्मा स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षा तथा एक ही बार स्व-परचतुष्टयकी अपेक्षा, बाणके समान, अस्ति-नास्ति-अवक्तव्यरूप सिद्ध होता है।९।

विकल्पनयसे वही आत्मा भेदसहित है, जैसे एक पुरुष, कुमार, बालक, युवा और वृद्धके भेदोंसे सविकल्प होता है।१०।

अविकल्पनयसे वही आत्मा अभेद है, जैसे वही पुरुष पुरुषपनेसे अभेदरूप है।११।

नामनयसे वही आत्मा शब्दब्रह्मद्वारा नाम लेकर पुकारा जाता है।१२।

स्थापनानयसे वही आत्मा पुद्गलके आलम्बन द्वारा स्थापित किया जाता है, जैसे मूर्तिक पदार्थ स्थापित किया जाता है।१३।

द्रव्यनयसे वही आत्मा अतीत-अनागतपर्यायरूपसे कहा जाता है, जैसे श्रेणिक राजा तीर्थंकर महाराज हैं।१४।

भावनयसे वही आत्मा जिस भाव-परिणाममें है उस परिणामसे तन्मय होता है। जैसे पुरुष समान-विपरीत संभोगमें प्रवर्तती स्त्री उस पर्यायरूप होती है।१५।

सामान्यनयसे वही आत्मा अपनी समस्त पर्यायोंमें व्यापक है, जैसे हारका सूत सब मोतियोंमें व्यापक है।१६।

विशेषनयसे वही आत्मा एक पर्यायद्वारा कहा जाता है, जैसे उस हारका एक मोती पूरे हारमें अव्यापी है।१७।

नित्यनयसे वही आत्मा ध्रुवरूप है, जैसे यद्यपि नट अनेक स्वांग धरता है तो भी वही नट एक है (और इस प्रकार नित्य है)।१८।

अनित्य नयसे वही आत्मा अवस्थान्तरकी अपेक्षा अनवस्थित है, जैसे वही नट-राम-रावणादिके स्वांगकी अपेक्षा अन्यका अन्य हो जाता है।१९।

सर्वगतनयसे वही आत्मा सकलपदार्थवर्ती है, जैसे खुली आंख घट-पट आदि समस्त पदार्थोमें प्रवृत्त है।२०।

असर्वगतनयसे वही आत्मा आपमें ही प्रवृत्त है, जैसे मुंदा हुआ नेत्र अपनेमें ही है।२१।

शून्यनयसे वही आत्मा केवल अकेला ही शोभायमान है, जैसे सूना घर अकेला ही है।२२।

अशून्यनयसे वही आत्मा अनेकोंसे मिला हुआ शोभता है, जैसे अनेक मनुष्योंसे भरी हुई नौका शोभती है।२३।

ज्ञान-ज्ञेयके अभेदकथनरूप नयसे वही आत्मा एक है, जैसे अनेक ईंधनरूप परिणमी हुई अग्नि एक है।२४।

ज्ञान-ज्ञेयके भेदकथनरूप नयसे वही आत्मा अनेक है, जैसे दपर्ण घट-पट आदि अनेक पदार्थोंके प्रतिबिम्बोंसे अनेकरूप होता है।२५।

नियतिनयसे वही आत्मा अपने निश्चित स्वभाववाला है, जैसे पानी अपने सहज स्वभावसे शीतलतावाला है।२६।

अनियतिनयसे वही अनिश्चित स्वभाववाला है, जैसे पानी अग्निके संबंधसे उष्ण होता है।२७।

स्वभावनयसे वह किसीके द्वारा सँवारा नहीं जाता ऐसा है, जैसे कांटा स्वभावसे ही-किसीके बिना गढ़े ही-गढ़ा हुआ जैसा तीक्ष्ण होता है।२८।

अस्वभावनयसे वह किसीके द्वारा सँवारा (सुधारा) जाये ऐसा है, जैसे लोहेका बाण लुहारके द्वारा गढ़कर तीक्ष्ण बनाया जाता है।२९।

कालनयसे वह जिसकी कालके आधीन सिद्धि होती है, ऐसा है जैसे ग्रीष्मकालके अनुसार डालमें लगा हुआ आम सहज पक जाता है।३०।

अकालनयसे वह जिसकी कालके आधीन सिद्धि नहीं ऐसा है, जैसे घासकी कृत्रिम गर्मीसे पालका आम पक जाता है।३१।

पुरुषाकारनयसे वह जिसकी यत्नपूर्वक सिद्धि होती है ऐसा है; जैसे मधु उत्पन्न करनेके लिये काष्ठके छेदमें एक मधुमक्खी रखी जाती है उस मक्खीके शब्दसे अन्य मधुमक्खियाँ आ-आकर मधुछत्ता बनाती हैं-इस प्रकार प्रयत्नसे भी मधुकी सिद्धि होती है। उसी प्रकार यत्नसे भी द्रव्यकी सिद्धि होती है।३२।

दैवनयसे वह जिसको यत्न बिना भी साध्यकी सिद्धि होती है ऐसा है; जैसे यत्न तो मघुके लिये किया था, परन्तु दैवयोगसे उस मधुके छत्तामेंसे माणिकरत्नकी प्राप्ति हो गई। इस प्रकार यत्न बिना भी साध्यकी सिद्धि होती है।३३।

ईश्वरनयसे वह पराधीन हुआ भोगता है, जैसे बालक धायके आधीन होकर खान-पान क्रिया करता है।३४।

अनीश्वरनयसे वह स्वाधीन होकर भोगता है, जैसे स्वेच्छाचारी सिंह मृगोंको मारकर खान-पान क्रिया करता है।३५।

गुणीनयसे वह गुणोंका ग्रहण करनेवाला है, जैसे उपाध्यायके द्वारा जिसे सिखाया जाता है ऐसा कुमार गुणग्राही होता है।३६।

अगुणीनयसे वह मात्र साक्षीभूत है-गुणग्राही नहीं, जैसे उपाध्यायके द्वारा जिसे सिखाया जाता है ऐसे कुमारका रखवाला पुरुष साक्षीभूत रहता है-गुणग्राही नहीं होता।३७।

कर्तानयसे वह रागादिभावोंका कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगका करनेवाला होता है।३८।

अकर्तानयसे वह रागादिभावोंका करनेवाला नहीं-मात्र साक्षीभूत है, जैसे रंगरेज जब अनेक रंग करता-बनाता है तब तमाशा देखनेवाला तो मात्र तमाशा ही देखता है, परन्तु कर्ता होता नहीं।३९।

भोक्तानयसे वह सुख-दुःखका भोक्ता है, जैसे हित अहितकर-

अन्नको लेनेवाला रोगी सुख-दुःख भोगता है।४०।

अभोक्ता नयसे सुख-दुःखका भोक्ता नहीं, मात्र साक्षीभूत है; जैसे हित-अहितकर अन्नको भोगनेवाले रोगीका तमाशा देखनेवाला वैद्यका नौकर मात्र साक्षीभूत है।४१।

क्रियानयसे वह जिसकी क्रियाकी प्रधानतासे सिद्धि होती है ऐसा है; जैसे किसी अन्धेने महा दुःखके कारण किसी पाषाणके खंभेको प्राप्त कर अपना सिर फोड़ा वहां उस अन्धेके मस्तकमें जो रक्तविकार था वह दूर हो गया और उससे उसे दृष्टिलाभ हो गया तथा उसी स्थानसे उसे खजाना मिल गया। इस प्रकार क्रियाका कष्ट करके भी वस्तुकी प्राप्ति होती है।४२।

ज्ञाननयसे वह जिसको विवेककी प्रधानतासे सिद्धि होती है ऐसा है; जैसे किसी रत्नके परीक्षक पुरुषने किसी अजान गरीब पुरुषके हाथमें चिन्तामणी रत्न देखा तब उस गरीब पुरुषको बुलाकर अपने घरके कोनेमें जाकर एक मुट्ठी चना देकर उसके बदले चिन्तामणि रत्न ले लिया। इस प्रकार क्रियाका कष्ट उठाये बिना वस्तुकी सिद्धि होती है।४३।

व्यवहारनयसे यह आत्मा पुद्‌गलके साथ बन्ध-मोक्ष अवस्थाकी द्विविधामें प्रवर्तता है, जैसे एक परमाणु दूसरे परमाणुसे बंधता है-छूटता है। इस प्रकार यह आत्मा बन्ध-मोक्ष अवस्थाको पुद्‌गलके साथ धारण करता है।४४।

निश्चयनयसे वह परद्रव्यके साथ बन्ध-मोक्ष अवस्थाकी द्विविधाको नहीं धारण करता, मात्र अपने ही परिणामके साथ बन्ध-मोक्ष अवस्थाको धारण करता है; जैसे अकेला परमाणु बन्धमोक्ष अवस्थाके योग्य अपने स्निग्ध-रूक्षगुणपरिणामको धारण करता हुआ बन्ध-मोक्ष अवस्थाको

धारण करता है।४५।

अशुद्धनयसे यह आत्मा ओपाधिक भेदस्वभाव सहित है, जैसे एक मिट्टी घट-सरावा आदि अनेक भेदसहित होती है।४६।

शुद्धनयसे वह उपाधिरहित अभेदस्वभावरूप है, जैसे मिट्टी भेदभाव रहित केवल मिट्टी ही है।४७।

-इत्यादि अनन्त नयोंसे वस्तुकी सिद्धि होती है। वस्तुको अनेक प्रकारके वचन-विलाससे दिखाया जाता है।

जितने वचन हैं उतने ही नय हैं और जितने नय हैं उतने ही मिथ्यावाद हैं।

(श्लोक)

[1]'य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति।।'
[2]'एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।।'
-इत्यादि।

एक नयको सर्वथा माना जाय तो मिथ्यावाद हो जाय तथा जो कथंचित् माना जाय तो यथार्थ अनेकान्तरूप सर्वज्ञवचन बन जाय,

१ **अर्थ :-** जो नयपक्षपातको छोड़कर सदा (अपने) स्वरूपमें गुप्त होकर निवास करते हैं वे ही, जिनका चित्त विकल्पजालसे रहित शांत हो गया है ऐसे होते हुए, साक्षात् अमृतपान करते हैं।

२ **अर्थ :-** जीव कर्मोंसे बँधा हुआ है ऐसा एक नयका पक्ष है और नहीं बँधा हुआ है ऐसा दूसरे नयका पक्ष है; इसप्रकार चित्स्वरूप जीवके सम्बन्धमें दो नयोंके दो पक्षपात हैं। जो तत्त्ववेत्ता (वस्तुस्वरूपका ज्ञाता) पक्षपात रहित है उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव चित्स्वरूप ही है (अर्थात् उसे चित्स्वरूप जीव जैसा है वैसा ही निरन्तर अनुभवमें आता है।)

इसलिये एकान्तका निषेध है। एक ही वस्तु अनेक नयों द्वारा साधी जाती है।

(जितने नय हैं उनके विषयभूत धर्म प्रत्येक आत्मामें सदा पाये जाते हैं, इसलिये एक आत्माके एक कालमें उक्त सब नय लागू पड़ते हैं।)

यह आत्मा नय और प्रमाण द्वारा जाना जाता है। जैसे एक समुद्रको जब जुदे-जुदे नदियोंके जलो द्वारा साधा जाय तब गंगा- यमुना आदिके श्वेत-नीले जलोंके भेदसे वह एक-एक स्वभावको धारण करता है, वैसे ही यह आत्मा नयोंकी अपेक्षा एक-एक स्वरूपको धारण करता है। तथा जैसे वही समुद्र अनेक नदियोंके जलोंसे एक समुद्र ही है, उसमें भेद नहीं, अनेकान्तरूप एक वस्तु है, वैसे ही यह आत्मा प्रमाणकी विवक्षासे अनन्तस्वभावमय एक वस्तु है। इस प्रकार आत्मा एक-अनेकस्वरूप नय-प्रमाणसे साधा जाता है। नयोंसे तो एकस्वरूप दिखाया जाता है और प्रमाणसे अनेकस्वरूप दिखाया जाता है। इसप्रकार 'स्यात्' पदकी शोभासे गर्भित नयोंके स्वरूप द्वारा तथा अनेकान्तरूप प्रमाण द्वारा जो पुरुष अनंतधर्मसंयुक्त शुद्धचिन्मात्रवस्तुका अवधारण करता है वह पुरुष साक्षात् आत्मस्वरूपका अनुभवी होता है। इस प्रकार आत्मद्रव्यका स्वरूप जानना।

अब उस आत्माकी प्राप्तिका प्रकार दिखलाते हैं -

१ (आत्मप्राप्तिका प्रकार :-)

यह आत्मा अनादिकालसे पुद्गल कर्मके निमित्तसे मोहमदिराका पान कर उसमें मग्न हुआ घूमता है और समुद्रके समान आप अपनेमें ही विकल्परूप तरंगो द्वारा महाक्षोभित हो रहा है, क्रमपूर्वक प्रवर्तनेवाले इन्द्रियज्ञानके अनन्त भेदोंसे सदाकाल पलटता रहता है-एकरूप स्थिर नहीं रहता, अज्ञानभावसे पररूप बाह्य पदार्थोंमें आत्मबुद्धिसे मैत्रीभाव करता है, आत्मविवेककी शिथिलतासे सर्वथा बहिर्मुख हुआ है, बार-बार पौद्गलिक कर्मको उपजानेवाले जो राग- द्वेष-भाव हैं उनकी द्वैततामें प्रवर्तता है; ऐसे आत्माको शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्माकी प्राप्ति कैसे होवे ? कहांसे होवे ? परन्तु यही आत्मा जो अखण्डज्ञानके अभ्याससे अनादि पुद्गलकर्मसे उत्पन्न कराये गये इस मिथ्यामोहको अपना घातक जानकर भेदज्ञान द्वारा अपनेसे उसे पृथक् कर केवल आत्मस्वरूपकी भावनासे निश्चल स्थिर हो जाय, तो अपने स्वरूपमें निस्तरंग समुद्रके समान निष्कम्प हुआ तिष्ठता है, एक ही बार व्याप्त हुए जो अनंत ज्ञानकी शक्तिके भेद उनसे वह पलटता नहीं, अपनी ज्ञानशक्तियोंके द्वारा बाह्य परस्वरूप ज्ञेयपदार्थोंसे मैत्री करता नहीं, निश्चल आत्मज्ञानके विवेक द्वारा अत्यन्त स्वरूप-सन्मुख हुआ है, पुद्गलकर्मबन्धके कारण राग-द्वेषभावकी दुविधासे दूर रहता है। ऐसा जो परमात्माका आराधक पुरुष है वह भगवान आत्माको-जो कि पहले नहीं अनुभव किया हुआ है, ज्ञानानंदस्वरूप है और परमब्रह्म है उसको-प्राप्त होता है। आप ही साधक है, आप ही साध्य है; अवस्थाओंके

१ देखो श्री प्रवचनसारकी तत्त्वप्रदीपिका - टीकाका अंतिम भाग।

भेदसे साध्य-साधक भेद हैं।

ये संसारके समस्त जगत-जीव भी ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मभावको प्राप्त होओ।

जो आत्मतत्त्व आनन्दरूप अमृतजलके प्रभावसे परिपूर्ण बह रही केवलज्ञान-नदीमें मग्न हो रहा है, जो तत्त्व सम्पूर्ण लोकालोक देखनेमें समर्थ है, जो तत्त्व ज्ञानसे प्रधान है, जो तत्त्व अमूल्य श्रेष्ठ महारत्नके समान अति शोभायमान है और जो तत्त्व लोकालोकसे अलग है-अर्थात् जैसा लोकालोक है वैसा वह तत्त्व नहीं है और जैसा वह तत्त्व है वैसा लोकालोक नहीं है, लोकालोक और इस तत्त्वमें सूर्य-अन्धकारके समान अन्तर है, यह तत्त्व लोकालोकको देखने-जाननेमें समर्थ है, परन्तु लोकालोक इस तत्त्वको देखने-जाननेमें समर्थ नहीं है - उस तत्त्वको स्याद्वादरूप जिनेश्वरके मतको अंगीकार करके, जगतजन अंगीकार करो; जिससे परमानन्दकी प्राप्ति होवे।

जैसे दीपककी ज्योतिमें कालिमा - काजल है, वैसे ही केवल ज्ञानज्योति परमात्मामें यह जगत, जुगत, जोग, तूं, मैं, यह, वह, विधि, निषेध, बन्ध-मोक्ष आदिक हैं।

एक दीपकके साथ हजार दीपक जोड़ो, परन्तु वह पहलेकी दीपकज्योति तो जैसीकी तैसी भिन्न है, वही है।

कलश, हंडा-वासन होते है और विघट जाते हैं, परन्तु मिट्टी तो होती भी नहीं और विघटती भी नहीं।

सुवर्णका कड़ा मुद्रिका हो जाता है तथा बिगड़ जाता है, परन्तु सुवर्ण तो होता भी नहीं और बिगड़ता भी नहीं।

लाखों मन गेहूं, चना, मूगं और मोठ होता है और खर्च हो जाता है; तथा फिर वही लाखों मन गेहूं, चना, मूंग और मोठ

जैसाका तैसा उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् बीजका नाश कभी भी नहीं होता।

समुद्रमें से हजार कलश पानी भरकर बाहर निकाल दो तो भी समुद्र तो जैसाका तैसा वही है और उसी समुद्रमें हजार कलश पानी अन्य स्थानसे लाकर डाल दो तो भी समुद्र जैसाका तैसा वही है।

स्त्री विधवापदको प्राप्त हो जाय और वह केवल कज्जल, टिक्की और नथनी न पहने किन्तु और सब आभूषण पहने रहे तो भी उसको विधवा कहना योग्य है।

मोती समुद्रके पानीमें होता है, और उस मोतीको सौ वर्ष तक उस पानीमें डाल रखे तो भी वह मोती गलता नहीं; परन्तु वही मोती हंसके मुखमें जानेके साथ ही गल जाता है।

सूर्य है वह सूर्यको वृथा ही ढूंढता है, तथा अन्धा है वह अन्धकारसे अलग होनेकी वृथा ही इच्छा करता है।

शास्त्रमें लिखते हैं कि मुनि बाईस परीषह सहन करता है, तेरह प्रकारका चारित्र पालता है, दसलक्षण धर्म पालता है, बारह भावनाओंका चिन्तवन करता है और बारह प्रकारके तप तपता है इत्यादि मुनि करता है। अब यहाँ ऐसा विचार आता है कि मुनि तो एक और परीषह बाईस, चारित्र तेरह प्रकारका, दसलक्षण धर्म व एक धर्मके दसलक्षण, बारह तप और बारह भावना इत्यादिक बहुत ? मुनि कुछ और है तथा बाईस परीषह कुछ और हैं, बाईस परीषहका तथा मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य- प्रकाशके समान मेल नहीं है। इसी प्रकार तेरह प्रकारके चारित्रका और मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य-प्रकाशके समान मेल नहीं है। इसी

प्रकार दशलक्षण धर्म, बारह तप तथा बारह भावनाका और मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य-प्रकाशके समान मेल नहीं है।

आकाशमें सूर्य है, उसका प्रतिबिम्ब घी-तेलसे तप्त कढ़ाईमें पड़ता है। तो भी उस सूर्यके प्रतिबिम्बका नाश होता नहीं।

काँचके महलमें कुत्ता अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भौं-भौं करके मरता है।

स्फटिककी भीतमें हाथी अपनी प्रतिच्छाया देखकर स्वयं ही भीतसे भिड़-भिड़ाकर अपना दांत स्वयं तोड़कर दुःखी हुआ।

एक बन्दर बड़े वृक्षके ऊपर रात्रिमें बैठा था। वृक्षके नीचे एक सिंह आया। चन्द्रमाकी चांदनीमें उस बन्दरकी छाया सिंहने देखी; देखकर उस सिंहने उस छायाको सच्चा बन्दर जानकर गर्जना की और उस बन्दरकी छायाको पंजा मारा; तब वृक्षके ऊपर बैठा हुआ बन्दर भयभीत होकर नीचे आ गिरा।

एक सिंहने कुएँमें अपनी छाया देखकर स्वयं अपने दिलमें विचार किया कि 'यह दूसरा सिंह है।' तब उसने गर्जना की, तब कुएँमेंसे सिंहकी गर्जना जैसी प्रतिध्वनि आई; इससे वह सिंह उछलकर कुएँमें जा गिरा।

गाय चरानेवाले एक गुवालके तत्काल जन्मा हुआ सिंहका बच्चा हाथ लग गया; वह गुवाल उस सिंहके बच्चेको (अपने घर) ले आया; लाकर उसे बकरा-बकरियोंके साथ रक्खा; सिंहका बच्चा बकरीका दूध पीकर अपना आपपना भूलकर बकरा-बकरियोंको अपना साथी जानकर रहने लगा।

सुआ अपने पंजोंसे नलिनीको पकड़कर उसे छोड़ता नहीं तथा बन्दर घड़ेमें चनोंकी मुट्ठी बांधकर उसे छोड़ता नहीं।

सिंह अपनी छाया कुएँमें देखकर तथा स्वयं अपना स्वरूप भूलकर कुएँमें गिरता है और दुःखी होकर मरता है। पृष्ठ - १३१

बन्दरने घड़ेमें मुट्ठी बाँधी है उसे छोड़ता नहीं और मानता है कि मुझे किसीने पकड़ लिया ! पृष्ठ - १३१

छह द्रव्य हैं, उनके (छहके) न सात होते हैं और न पांच होते हैं-यह निश्चय है।

अन्धकारयुक्त एक बड़े स्थानमें दस, बीस, पचास, मनुष्य होवें, वे परस्पर शब्द-वचन सुनकर यह उसका निश्चय करता है और वह इसका निश्चय करता है; और शब्द सुनकर वे देखने-जाननेकी इच्छा करते हैं।

मेघ-बादलमें सूर्य है उसे कोई काला व मेघ-बादल सदृश मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। तथा सूर्यके आड़ा मेघ-बादल आ जाय तब सूर्य अपना सूर्यपना छोड़कर कहे-विचारे कि 'मैं तो सूर्य नहीं, मेघ-बादल हूं'-इस प्रकार जो सूर्य स्वयंको समझे, तो वह सूर्य भी मिथ्यादृष्टि ही है।

मार्गमें पंक्तिबद्ध वृक्ष हैं, उनकी छाया भी पंक्तिबद्ध है। एक पुरुष उस छायाकी पंक्तिके अनुसार चला जाता है, वहाँ प्रतिच्छाया एक जाती है और एक आती है।

गरम लोहेके गोलामें अग्नि भीतर और बाहर है, परन्तु अग्नि और लोहा अलग-अलग हैं।

चन्द्रमा बादलमें छिप रहा है, परन्तु चन्द्र और बादल अलग-अलग हैं।

ध्वजा पवनके संयोगसे स्वयं ही उलझती है और सुलझती है।

चूर्ण कथनमात्र है, परन्तु उसमें सोंठ, मिरच, पीपल और हरड़ आदि सब अलग-अलग हैं।

एक चूनरीमें अनेक बूंदा हैं, एक कोटमें अनेक कंगूरा हैं, एक समुद्रमें अनेक लहरें-तरंगें हैं, एक सुवर्णमें अनेक आभूषण हैं, एक मिट्टीमें अनेक हंडा-वासन हैं तथा एक पृथ्वीमें अनेक मठ-मकान

हैं, वैसे ही एक परमात्माके केवलज्ञानमें अनेक जगत झलक रहे हैं।

कृष्ण रंगकी गायें चार भले हों, परन्तु उन सबका दूध मीठा ही होता है।

लोहेके पिंजरामें बैठा हुआ सुआ राम राम कहता है, परन्तु केवल राम राम कहनेसे लोहेका बन्ध नहीं टूटा तो ऐसे राम राम कहनेसे यमका फंदा कैसे टूटेगा ?

एक पुरुष परस्त्रीलंपट था, उसे स्वप्न आया। स्वप्नमें वह पुरुष परस्त्री भोगने लगा; उसी समय उसका एक प्रतिपक्षी शत्रु आया, आकर उसे तलवार मारी, इससे उस व्यभिचारीका हाथ कट गया और उसमेंसे लहू निकला तथा उसी समय उस (पुरुष) का वीर्य स्खलित हो गया। पीछे जब वह जागा तब वीर्यसे तो (अपना) अधोवस्त्र लिप्त हुआ प्रत्यक्ष देखा पर रुधिरसे वस्त्रादिक लिप्त न देखा।

एक बालक झूठे मिट्टीके बैलसे प्रीति करता है तथा एक किसानका बालक सच्चे बैलसे प्रीति करता है; झूठे और सच्चे बैलसे प्रीति करनेवाले दोनों बालक दुःखी ही हैं, कारण कि उनके बैलोंको कोई जोते-पकड़े, अन्यथा करे तो वे दोनों दुःखी होते हैं।

किसी एक मनुष्यको कीचड़में रत्न-जवाहरातकी भरी हुई बटलोई मिली। तब वह उस बटलोईको बावड़ीमें धोनेके लिये ले गया। वहाँ धोते-धोते बटलोई बावड़ीमें गिर गई, तब वह रोने लगा।

सफेद लकड़ीका, अग्निकी संगतिसे काला कोयला हो गया। अब वह कोयला किसी भी उपायसे सफेद होनेका नहीं। परन्तु अब फिर जो अग्निकी संगति करे तो वह कोयला सफेद हो जाय।

एक मिट्टीके कलशमें जहाँ तक जल है वहाँ तक उसके अनेक

नाम हैं। परन्तु वह कलश फूट जाय तो बादमें पानीका और कलशका नाम कहाँ रहा ?

मोर नाचता है तो श्रेष्ठ, परन्तु औंधा, पीछेका अधोभाग उघाड़कर नाचता है। इसी प्रकार गुरु बिना क्रिया व्यर्थ है।

कच्चे आटेसे भी पेट भर जाता है, परन्तु उसी आटेकी रोटी बनाकर और पकाकर खावे तो स्वादिष्ट लगती है।

तस्वीरसे तस्वीर उतर सकती है।

वड़के बीजमें अनेक वड़ और अनेक वड़में अनन्तानन्त बीज हैं।

सन्निपातयुक्त पुरुष अपने घरमें सोता है, तो भी कहता है कि 'मैं अपने घरमें जाऊँ।'

एक शेखचिल्लीकी पगड़ी अपने सिरके ऊपरसे जमीन पर गिर पड़ी, उसे वह शेखचिल्ली उठाकर कहता है कि 'यह एक पगड़ी मुझे मिली है।'

बांससे बांस धृष्ट हो तब अग्नि उत्पन्न होती है और वह अग्नि उस बाँसको भस्म कर स्वयं भी शान्त हो जाती है।

शंख श्वेत है, वह काली, पीली और लाल मिट्टीको भक्षण करता है तो भी शंख श्वेतका श्वेत रहता है।

दो बजाजोंकी दुकान भागीदारीमें थी। किसी कारणसे उन दोनों बजाजोंमें परस्पर टेढ़ पैदा हो गई। इससे वे दोनो बजाज परस्पर आधा-आधा वस्त्र फाड़कर हिस्साबांट करने लगे। तब किसी सम्यक् जानकारने कहा कि 'तुम इस प्रकार परस्पर हिस्साबांट करते हो पर इससे तो तुम्हारे सौ रुपयेके वस्त्रका पचास रुपया उत्पन्न होगा, बड़ी हानि होगी। तब वे दोनों हानि होती जान मिले ही रहे।

पूर्णिमाके चन्द्रके और अमावस्याके सूर्यके भ्रान्तिसे अन्तर दिखाई

देता है।

एक साहूकारने अपने पुत्रको परदेश भेजा। कितने ही दिनके बाद बेटेकी बहू बोली 'मैं तो विधवा हो गई।' तब उस सेठने अपने पुत्रके नाम पत्र भेजा, उसमें ऐसा लिखा कि 'बेटा ! तेरी बहू तो विधवा हो गई।' तब वह सेठका पुत्र उस पत्रको पढ़कर शोक करने लगा। किसीने पूछा 'तुम शोक क्यों करते हो ?' उसने कहा- 'हमारी स्त्री विधवा हो गई।' यह सनुकर वह बोला - 'तुम तो प्रत्यक्ष जीवित मोजूद हो, फिर तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो गई ?' तब वह सेठका पुत्र बोला-'तुमने कहा वह तो सच है, परन्तु मेरे दादाजीका लिखा हुआ पत्र आया है उसे झूठा कैसे मानूं ?'

दो स्वानुभवज्ञानी परस्पर वार्ता करने लगे :-

प्रश्न :- सूर्य मर जाय तो फिर क्या हो ?

उत्तर :- चन्द्रमा है कि नहीं ?

प्रश्न :- चन्द्रमा भी मर जाय तो फिर क्या हो ?

उत्तर :- चिराग-दीपक है कि नहीं ?

प्रश्न :- और जो चिराग-दीपक मर जाय तो फिर क्या हो ?

उत्तर :- शब्द-वचन है कि नहीं ?

प्रश्न :- और जो शब्द-वचन भी मर जाय तो क्या हो ?

उत्तर :- अटकल (अनुभव) है कि नहीं ?

तब प्रश्नकार बोला-ठीक है, मैं समझ गया।

पूरे सफेद वस्त्रके ऊपर रंग श्रेष्ठ लगता है। जो मूर्ख हो वह कच्ची हंडीमें जल भरे। तेल और रुईकी बत्ती श्रेष्ठ हो तो दीपक प्रकाश करता है, (अर्थात्) शीघ्र ज्योति प्रकाशमान कर देता है।

एक एकान्तवादी अपने शिष्यसे बोला कि 'यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म

है।' यह सुनकर, शिष्य बाजारमें गया था वहाँ एक हाथीका महावत हाथी लेकर आ रहा था और हाथीके ऊपर बैठा हुआ चिल्ला रहा था कि 'मेरा हाथी दीवाना है, अलग हो जाओ;' तब उस एकान्तवादीके शिष्यने अपने दिलमें विचार किया कि 'वह हाथी ब्रह्मरूप है और मैं भी ब्रह्मरूप हूँ।' तब स्याद्वादीने उससे कहा की 'तो क्या वह महावत स्यात् ब्रह्मरूप नहीं है ?'

क्षीरोदधिके समुद्रमें कोई जहरका एक बिन्दु डाल दे तो क्या समुद्र जहरमय हो जायगा ? अर्थात् नहीं होगा।

औंधे कलशके ऊपर चाहे जितना जल डालो, जल कलशके भीतर जाननेवाला नहीं।

एक योजन समचौरस मकानमें सरसोंका दाना पड़ा है, वह कौन जाने कहां पड़ा है।

एक दपर्णमें मयूरकी रंग-बेरंगी प्रतिच्छाया दिखाई देती है, वह निश्चयसे मयूरसे भिन्न नहीं और दपर्ण दपर्णसे भिन्न नहीं।

एक धूलि धोनेवाले न्यारियाको पांच लाख रुपयोंके पाँच रत्न मिल गये। तब किसीने न्यारियासे कहा-'तूं अब तो धूलि धोना छोड़ दे !' वह न्यारिया बोला-'छोडूं कैसे ?' मुझे तो इस धूलिमेंसे रत्न मिले हैं।'

दीपकके प्रकाशमें मनोवांछित रत्न मिल गया; अब दीप रक्खो तो भी क्या और नहीं रक्खो तो भी क्या ?

अचेतन मूर्तिके ऊपर पक्षी आकर बैठता है, डरता नहीं।

किसी स्त्रीका पति परदेशमें जाकर मर गया। अब वह स्त्री उसकी मूर्ति बनाकर पतिके समान आनन्द लेना चाहे तो वह मिथ्या है। अथवा वही स्त्री परदेशमें मरे हुए पतिका नाममात्र स्मरण करे तो

भी क्या उस स्त्रीको प्रत्यक्ष पतिके समान आनन्द होगा? अर्थात् नहीं होगा।

सर्व नामको करनेवाला, उसको नाम क्या ?

सबका साक्षीदार, उसको रंगरूप क्या ?

एक मूर्ख जिस वृक्षकी डाल पर बैठा है उसी डालको अपने जमीनमें गिर जानेकी तरफसे काटता है; वह देखकर ज्ञानीको ज्ञान हो गया।

एक कलश गंगाजलसे भरा हुआ है तथा दूसरा कलश विष्टासे भरा हुआ है। कदाचित् ये दोनों कलश फूट जायं तो फूटनेसे क्या जाता रहा ?

चामाचीड़ी, बागल और उल्लू इन्हें सूर्यकी बिलकुल खबर नहीं। एकदिन चामाचीड़ीने ऐसा सुना कि 'सूर्य उगनेवाला है,' तब उस चामाचीड़ीने बागलके पास जाकर कहा कि 'सूर्य उगनेवाला है;' तब बागल बोली कि 'सूर्य तो कभी उगा ही नहीं; अच्छा चलो, अपना मालिक उल्लू है उससे जाकर पूछें' ऐसा विचार कर वे चामाचीड़ी और बागल दोनों उल्लूके पास गये और जाकर कहा कि 'सूर्य उगनेवाला है ऐसा हमने सुना है;' तब उल्लू बोला कि 'एक समय मैं स्थान चूककर चार पहर बैठा रहा था, उससे पंख गरम हो गये; कदाचित् यही गरम-गरम अर्थात् ताता-ताता सूर्य हो तो हो।'

मानसरोवरकी खबर कुएँके मेंढकको होती नहीं। कोई हंस उस मेंढकको मानसरोवरकी सच्ची खबर भी कहे तो भी वह मेंढक उसे यथार्थ मानता नहीं।

यह पुरुष अमावस्याकी रात्रिमें चन्द्रको ढूंढ़ता है, यदि चांदनीमें ढूंढे तो अवश्य मिल सकता है।

(दोहा)

जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।
ये आठ मद हैं बुरे, मत पीवो दुखकार।।

जैसे सूर्यसे अन्धकार जुदा है, वैसे ही ये आठ मद परमात्मासे जुदे हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये कथनमात्र तीन हैं, निश्चयसे देखा जाय तो एक ही हैं; जैसे अग्नि, उष्णता और प्रकाश ये कथनमात्र तीन नाम हैं, निश्चयसे देखा जाय तो एक ही हैं।

जिस अवस्थामें मुनि सोता है उस अवस्थामें जगत जागता है तथा जिस अवस्थामें जगत जागता है उस अवस्थामें मुनि सोता है।

सूर्यको अन्धकारकी खबर नहीं तथा अन्धकारको सूर्यकी खबर नहीं।

(कवित्त)

लाल वस्त्र पहरेसे देह तो न लाल होय,
सद्गुरु कहे भव्य जीवनसें तोरो तुरत मोहकी जेल,
मिट्टीका कारज घट जैसे, मिट्टी उसके बाहिर माहि,
पूर्णिमाके चन्द्रमा और अमावस्याके सूर्यमें अन्तर नहीं।

दक्षिणायन और उत्तरायनकी तथा कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षकी तथा चार प्रहर रात्रिकी पक्ष छोड़कर देखे कि पूर्णिमा और अमावस्याके

सूर्य और चन्द्रमामें क्या अन्तर है ?

द्वितीयाका चन्द्रमा उगा है, वह पूर्णगोल होगा; चिन्ता नहीं करना।

बालकके हाथकी मुट्ठीमें अमूल्य रत्न है और वह बालक उस रत्नको श्रेष्ठ जानकर छोड़ता भी नहीं, मुट्ठी दृढ़ बांध रक्खी है। परन्तु वह बालक उस रत्नको बालभावसे श्रेष्ठ जानता है, ज्ञानभावसे (श्रेष्ठ) नहीं जानता।

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म शरीरादिक नोकर्मसे वह परमात्मा भिन्न है। जैसे सूर्यसे अन्धकार भिन्न है, वैसे ही इस परमात्मासे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म भिन्न हैं।

जो अनन्त ज्ञानादिरूप निजभावको कभी भी नहीं छोड़ता तथा काम-क्रोधादि परभावको कभी भी ग्रहण नहीं करता;-जैसे सूर्य अपने गुण प्रकाश और किरणादिको छोड़ता नहीं तथा पर अन्धकार आदिको कभी भी ग्रहण करता नहीं, वैसे ही वह परमात्मा परको ग्रहण करता नहीं और आपको तथा अपने ज्ञानादि गुणको छोड़ता नहीं;- ऐसा वह परमात्मा परम पवित्र है।

'मैं, तूं, यह, वह सोहम् तथा हंहं' इत्यादि शब्दों-वचनोंके (विकल्पोंके) आदि, अन्त और मध्यमें है वह परमात्मा है। वह शुद्ध है तथा 'यह, मैं, तूं, वह, सोहम्, हंहं' हैं वे अशुद्ध हैं। जैसे सूर्यके सन्मुख अन्धकार नहीं वैसे उस केवल ज्ञानरूपी परमात्माके सन्मुख 'मैं, तूं, वह, यह, सोहम्, हंहं' ये नहीं। जिस समय सूर्य और अन्धकारका मेल होगा उस समय परमात्मा तथा इन 'मैं, तूं, वह, यह, सोहम्, हंहं' का मेल होगा। परमात्मा केवल ज्ञानी है और ये (विकल्प) अज्ञानी हैं। ज्ञान और अज्ञानका मेल कभी हुआ भी नहीं, होगा भी नहीं तथा है भी नहीं। ऐसा केवल ज्ञानी मैं हूं।

ठीक है, जैसा अन्न खावे उसके वैसी ही डकार आवे।

सूर्य अन्धकारकी इच्छा भी वृथा ही करता है तथा सूर्य सूर्यकी इच्छा भी वृथा ही करता है।

हजारों मन गेहूं, चना खर्च हो जाता है और फिर हजारों लाखों मन पैदा हो जाता है। न बीजका नाश होता है, न फलका नाश होता है।

एक जातिके लाल रत्नोंका ढेर दूरसे एकसा, अग्निका पुंज जैसा, दिखाई देता है, परन्तु उस रत्नराशिका प्रत्येक रत्न जुदा- जुदा है।

बहुत ही अमृतका समुद्र भरा है। पूरे समुद्रका जल किसीसे नहीं पिया जा सकता; अपनी-अपनी प्यासके प्रमाण जल पीकर सन्तुष्ट रहो।

(चौपाई)

धर्मदास क्षुल्लक मो नाम, रच्या ज्ञान - अनुभवको धाम।
मनमानी सो कही बखाण, पूरण करि समझो जिसु जाण।।

इति श्री क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास रचित दृष्टान्तसंग्रह सम्पूर्ण।

श्रीरस्तु श्री अरिहंताणं जयति।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

ॐ तत्सत् परब्रह्मपरमात्मने नमः

आकिंचन भावना

(दोहा)

मेरा मुझसे अलग नहीं, सो परमातम देव।
ताकूं वंदू भावसे, निश-दिन करता सेव।।१।।

मेरा मुझसे अलग नहीं, सो स्वरूप है मोय।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, अंतर-बाहिर जोय।।२।।

ज्यों अपणा निज रूप है, जानन-देखन ज्ञान।
इस बिन और अनेक है, सो मैं नहीं सुजाण।।३।।

अन्य द्रव्य मेरा नहीं, मैं मेरा ही सार।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, सो अनुभव सिरदार।।४।।

'मेरे ज्ञान - दर्शनमयस्वरूपके बिना अन्य किंचिन्मात्र भी मेरा नहीं है; मैं किसी अन्य द्रव्यका नहीं, मेरा कोई अन्य द्रव्य नहीं; जो मुझसे अलग है, उससे मैं भी अलग हूँ;' ऐसे अनुभवको आकिंचन कहते हैं। वही अनुभव मुझे है। मैं आत्मा हूँ; वही मुझे मैं समझता हूं। हे आत्मन् ! तुम अपनी आत्माको देहसे अलग ज्ञानमय, अन्य द्रव्यकी उपमा रहित तथा स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णरहित जानो। देह है

वह मैं नहीं तथा देहके भीतर-बाहर जो आकाशादिक है वह भी मैं नहीं। देह तो अचेतन जड़ है, हाड़-मांस-मल-मूत्रसे बना है, वा तन-मनसे बना है। मैं इस देहसे प्रथमसे ही ऐसा अलग हूं कि जैसा अन्धकारसे सूर्य अलग है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रपना आदि तथा जाति और कुल देहके हैं। ये स्त्री-पुरुष-नपुंसक आदि लिंग भी देहके हैं, मेरे नहीं। जो मुझे देह ही जानता है-मानता है वह बहिरात्मा-मिथ्यादृष्टि है। इसी प्रकार गोरापन-सांवलापन, राजापन-रंकपन, स्वामीपन-सेवकपन, पण्डितपन-मूर्खपन, गुरुपन, शिष्यपन इत्यादि रचना देहकी ही है, मेरी नहीं। मैं तो ज्ञाता हूं। नाम और जन्म-मरणादिक देहके धर्म हैं। तीन लोक, तीन काल और लोकालोकमें जितने नाम हैं वे सब मेरे नहीं। तथा तीन लोक, तीन काल वा लोकालोक है वह (सब) मुझसे ऐसे अलग है जैसे सूर्यसे अन्धकार अलग है। मैं जैनमतवाले, वैष्णवमतवाले और शैवमतवाले आदि किसी भी मतवालेका शिष्य वा गुरु नहीं हूं। मैं पररूप कर्ता, कर्म, क्रिया, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरणसे अलग हूं।

(दोहा)

यह आकिंचन भावना, भावै सुरत संभाल।
धर्मदास साची लिखै, मुक्त होय ततकाल।।१।।
अपनो आपो देखके, होय आपको आप।
होय निचिंत तिष्ठ्यो रहै, किसका करना जाप।।२।।

इति आकिंचन भावना समाप्त।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

भेदज्ञान विवरण

(चोपाई)

प्रथमहि भेदज्ञान जो भावै, सो ही शिवसुंदरि पद पावै।
तातै भेदज्ञान मैं भाऊं, परमातम पद निश्चय पाऊं।।१।।
क्षुल्लक धर्मदास अब बोलै, देश वचनिकामें नित खोलै।
वांचो पढ़ो भाव मन ल्याई, तातैं मिले मोक्षठकुराई।।२।।

(दोहा)

भेदज्ञान ही ज्ञान है, बाकी बुरो अज्ञान।
धर्मदास साची लिखै, भेमराज तुम मान।।३।।

[१] निश्चयसे एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ भी सम्बन्धी नहीं, कारण कि दोनों द्रव्य भिन्न-भिन्न प्रदेशरूप हैं इसलिये इनमें एक सत्ताकी अप्राप्ति है-द्रव्य-द्रव्यकी सत्ता जुदी-जुदी है; तथा इनकी एक सत्ता न होनेसे अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यके साथ आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है; इसलिये (प्रत्येक) द्रव्यका अपने स्वरूपमें ही प्रतिष्ठारूप आधार आधेयसम्बन्ध बन रहा है। इससे ज्ञान-आधेय- है वह

---

१ देखो श्री समयसारके संवर-अधिकारकी प्रथम दो गाथाकी आत्मख्याति- टीका।

जानपनारूप अपने स्वरूप-आधार-में ही प्रतिष्ठित है। और क्योंकि जो जानपना है वह ज्ञानसे अभिन्न भाव है-भिन्न-प्रदेशरूप नहीं, अतः ज्ञान है वह ज्ञानमें ही है। इसी प्रकार जो क्रोधादिक हैं वे क्रोधादिक्रियारूप जो क्रोधपना अपना स्वरूप उसीमें प्रतिष्ठित हैं। और क्योंकि क्रोधादिपनेरूप क्रिया क्रोधादिकसे अपृथग्भूत है- अभिन्नप्रदेशी है, अतः क्रोधादिक हैं वे क्रोधादिकमें ही हैं। तथा क्रोधादिकमें अथवा कर्म-नोकर्ममें ज्ञान नहीं है और ज्ञानमें क्रोधादिक अथवा कर्मनोकर्म नहीं हैं, कारण कि ज्ञानके तथा क्रोधादिक और कर्म-नोकर्मके परस्पर स्वरूपका अत्यन्त विपरीतपना है-उनका स्वरूप एक नहीं अतः परमार्थरूप आधार-आधेयसम्बन्धका शून्यपना है। तथा जैसे ज्ञानका, जाननक्रियारूप जानपना स्वरूप है वैसे (उसका) क्रोधादिरूप क्रियापना भी स्वरूप नहीं; और जैसे क्रोधादिकका, क्रोधादिपना आदिक्रियापना स्वरूप है वैसे (उनका) जाननक्रिया भी स्वरूप नहीं; क्योंकि जाननक्रियाका और क्रोधादिरूप क्रियाका स्वभावके भेदसे प्रगट प्रतिभासपना है और स्वभावके भेदसे वस्तुका भेद ही है यह नियम है। अतः ज्ञानके और अज्ञानरूप क्रोधादिकके आधार-आधेयभाव नहीं है।

यहाँ दृष्टान्त द्वारा विशेष कहते हैं-जैसे आकाशद्रव्य एक ही है उसे अपनी बुद्धिमें स्थापित कर उसमें आधार-आधेयभाव कल्पिये तब आकाशके सिवाय अवशेष अन्य द्रव्योंमें तो अधिकरणरूप आरोपणका निरोध हो गया इसलिये बुद्धिमें भिन्न आधारकी अपेक्षा तो रही नहीं; और जब भिन्न आधारकी अपेक्षा नहीं रही तब बुद्धिमें यही ठहरा कि आकाश एक ही है वह आकाशमें ही प्रतिष्ठित है, आकाशका आधार अन्य द्रव्य नहीं है, आप अपने ही आधार है। इस प्रकार भावना करनेवालेको अन्यका अन्यके साथ आधार- आधेयभाव

प्रतिभासता नहीं। इसी प्रकार जब एक ही ज्ञानको अपनी बुद्धिमें स्थापित कर आधार-आधेयभाव कल्पिये तब वहां बाकीके अन्य द्रव्योंमें आरोपण करनेका निरोध हो गया और इसीसे बुद्धिमें भिन्न आधारकी अपेक्षा रहती नहीं; और जब भिन्न आधारकी अपेक्षा ही बुद्धिमें नहीं रही तब एक ज्ञान ही ज्ञानमें प्रतिष्ठित ठहरा। इस प्रकार भावना करनेवालेको अन्यका अन्यके साथ आधार- आधेयभाव प्रतिभासता नहीं। अतः ज्ञान है वह तो ज्ञानमें ही है और क्रोधादिक हैं वे क्रोधादिकमें ही हैं। इस प्रकार ज्ञानके और क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्मके भेदका ज्ञान भले प्रकारसे सिद्ध हुआ।

भावार्थ :- उपयोग है वह तो चेतनाका परिणमन ज्ञानस्वरूप है तथा क्रोधादिक भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म और शरीरादि नोकर्म ये सब पुद्‌गलद्रव्यके परिणाम हैं, वे जड़ हैं। उनका और ज्ञानका प्रदेशभेद है, इससे उनमें अत्यन्त भेद है। अतः उपयोगमें तो क्रोधादि व कर्म-नोकर्म नहीं और क्रोधादि व कर्म-नोकर्ममें उपयोग नहीं। इस प्रकार उनके परमार्थस्वरूप आधार-आधेयभाव नहीं, परन्तु अपना-अपना आधार-आधेयभाव आप-आपमें है। इस प्रकार इनमें परमार्थसे परस्पर अत्यन्त भेद है। ऐसे भेदको जाने वही भेदविज्ञान है और वह भले प्रकारसे सिद्ध होता है।

(दोहा)

परमातम अर जगतके, बड़ो भेद सुन सार।
धर्मदास औरूं लिखै, वाच करो निरधार।।१।।

जैसे सूरज तम विषै, नहीं नहीं सुन वीर।
तैसे ही तमके विषै, सूर्ज नहीं रे धीर।।२।।

प्रकाश-सूर्य ये एक हैं, जड़-चेतन नहिं एक।
धर्मदास सांची लिखै, मनमें धारि विवेक।।३।।

स्पर्श आठ, रस पांच, वर्ण पांच और गन्ध दो (ये सब) आत्मा नहीं, कारण कि ये स्पर्शादिक पुद्गल-अचेतन-जड़ हैं, इसलिये आत्मामें और अचेतन पुद्गलमें भेद है। तथा शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत ये (सब भी) आत्मा नहीं, कारण कि ये शब्द-बन्धादिक पुद्गलकी पर्यायें हैं, अतः आत्मामें और शब्द-बन्धादिकमें भेद है। इसी प्रकार तन, मन, धन और वचन ये (भी) आत्मा नहीं, यथा -

(दोहा)

तनता मनता वचनता, जड़ता जड़से मेल।
लघुता गुरुता गमनता, ये अजीवका खेल।।

अर्थात् आत्मा अजीव नहीं, इसलिये आत्मामें और इन तन - मनादिकमें भेद है। **भावार्थ :-** जैसे सूर्यके प्रकाशमें और अमावस्याकी मध्यरात्रिके अन्धकारमें अत्यन्त भेद है, वैसे ही आत्मा और अनात्मामें भेद है। तन, मन, धन और वचन कोई और हैं तथा आत्मा कोई और है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अन्तःकरण कोई और हैं तथा आत्मा कोई और है। तूं, मैं, यह, वह और सोहम् ये कोई और हैं तथा आत्मा कोई और है। योग, युक्ति, जगत, लोक और अलोक कोई और हैं तथा आत्मा कोई और है। बन्ध, मोक्ष, पाप और पुण्य कोई और हैं तथा आत्मा कोई और है। जैन, वैष्णव,

बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक और वेदान्ती कोई और हैं तथा आत्मा कोई और है। तेरापन्थ, मेरापन्थ, उसका पन्थ, इसका पन्थ, वीसपन्थ, गुमानपन्थ, नानकपन्थ, दादूपन्थ, और कबीरपन्थ इत्यादि पन्थ ये सब एक पृथिवीके ऊपर हैं वह पृथिवी कोई और है तथा आत्मा कोई और है। जैन मतवाले, विष्णु मतवाले, शिव मतवाले, वेदान्त मतवाले, तेरापन्थ मतवाले, वीसपन्थ मतवाले और गुमानपन्थ मतवाले ये सब मतवाले जो मदको पीकर मतवाले हुए हैं वह मद कोई और है तथा आत्मा कोई और है।

(दोहा)

भेदज्ञानसे भ्रम गयो, नहीं रही कुछ आश।
धर्मदास क्षुल्लक लिखै, अब तोड़ मोहकी पाश।।१।।

जैसे सूर्यके प्रकाशमें दीपकका प्रकाश प्रसिद्ध है, वैसे स्वस्वरूप - सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव - सूर्यके प्रकाशमें यह सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी पुस्तक प्रसिद्ध है, भले भावसे पूर्ण प्रसूत हो चुकी है। जैसे अन्धभवनमें रत्न पड़ा है, सो रत्नका इच्छुक पुरुष हाथमें दीपक लेकर उस अन्धभवनमें रत्नके लिये जाय और रत्नको ही ढूंढे तो उस पुरुषको निश्चयसे रत्नलाभ होवे ही। वैसे ही यह भ्रम-अन्धकारमय भवन जगत-संसार है, उसमें उससे अतन्मयी रत्नत्रयमयी अमूल्य रत्न पड़ा है, उसका इच्छुक कोई धन्य पुरुष इस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी पुस्तकको अंगीकार कर इस भ्रम-अन्धकारमयी संसाररूपी भवनमें उस स्वभाव-सम्यग्ज्ञानमयी रत्नत्रयमय रत्नको ढूंढे तो उसे निश्चयसे आपके आपमें आपमयी स्वभाव-सम्यग्ज्ञानानुभवकी परमावगाढ़ता अचल होगी। परन्तु कोई इस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी पुस्तकके साथ तथा उसके

१९)

सुन्दर अक्षर-शब्द-पत्र-चित्रादिकके साथ, आपके आपमें आपमयी स्वभाव-सम्यग्ज्ञान है उसको सूर्य-प्रकाशवत् एक तन्मयी समझेगा-मानेगा-कहेगा उसको इस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी पुस्तकके पढ़ने-वांचनेसे स्वभाव-सम्यग्ज्ञानानुभवकी परभावगाढ़ता- अचलता नहीं होगी। हां, जैसे किसीको द्वारमेंसे सूर्यके दर्शनका लाभ होता है, वैसे ही किसी मुमुक्षुको इस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी पुस्तकसे निश्चय स्वस्वभाव-स्वसम्यग्ज्ञानमयी सूर्यके दर्शनका लाभ होगा।इस सम्यग्ज्ञानदीपिका नामकी पुस्तकको मैंने बनाया है उसमें मूल हेतु मेरा यह है कि स्वयं ज्ञानमयी जीव जिस स्वभावसे तन्मय है उसी स्वभावकी स्वभावना जीवसे तन्मयरूप अचल होओ, यही हेतु अन्तःकरणमें धारण कर यह पुस्तक बनाई है।

श्री सिद्धसेनमुनिपादपयोजभक्त्या,
देवेन्द्रकीर्तिगुरुवाक्य सुधारसेन।
जाता मतिर्विबुधमण्डलमण्डनेच्छोः
श्रीधर्मदासमहतो महती विशुद्धा।।१।।

इति श्री क्षुल्लक-ब्रह्मचारी धर्मदास रचित
सम्यग्ज्ञानदीपिका सम्पूर्ण।। श्री अर्हन्ताणं नमः।।

यह सम्यग्ज्ञानदीपिका ग्रन्थ क्षु. ब्र. श्री धर्मदासजीने विक्रम सं. १९४६ के माध सुदी १५ के दिन रचकर प्रकाशित किया।
ॐ शांति शांति शांति।

ब्रह्मरूपी संवत्सर

(दोहा)

दोय नयन पषकर्ण भुजा रवि संख्याजाणूं।
पांखा तत्त्वप्रमाण, श्याम अरु श्वेत बखाणूं।।

सात सीस दश पंच दशन दो पंक्ति सोहै।
नख शिख पंचक ईश, करण शिव संख्या दो है।।

पंख पंख प्रति पंचदश अंबर षट् अनलाचरण।
श्रीघर साचो देखिये ब्रह्मरूप अशरण - शरण।।

(कुंडलिया)

जाकि निर्मल बुद्धि है, ताकूं सब अनुकूल।
भूत भविष्य विचारिये वर्तमानकौ मूल।।

वर्तमानकौ मूल भूलमें कबहूं न भूले।
पढ़ सब शास्त्र पुराण वृथा ही भ्रममें झूले।।

कहते बल्लभराम, ब्रह्म है साचो साखी।
विद्यासूं सब होत, अगम बुध निर्मल जाकी।।

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१ अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२ आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३ अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
०४ आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५ आत्मअवलोकन	-
०६ बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७ द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८ दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९ दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१० धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११ दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२ धन्य पुरुषार्थी	-
१३ धन्य अवतार	-
१४ गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५ गुरु गिरा गौरव	-
१६ जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७ कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८ कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९ मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२० मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-
२१ मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००
२२ निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००

२३ परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत्त)	-
२४ प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५ परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६ प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७ प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८ प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९ प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३० प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१ प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२ पथ प्रकाश	२०.००
३३ प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३४ प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३५ सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३६ ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	-
३७ सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३८ सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३९ सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
४० समयसार नाटक	अनुपलब्ध
४१ समयसार कलश टीका	अनुपलब्ध
४२ समयसार	अनुपलब्ध
४३ स्मरण संचिका	२०.००
४४ स्वरूप भावना (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-९१३, ७१० एवं ८३३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई केप्रवचन)	२०-००
४५ तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४६ तत्थ्य	अनुपलब्ध
४७ विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन)	१०-००
४८ वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन	२०-००
४९ भगवान आत्मा	२०.००

૫૦ जिन प्रतिमा जिन सारखी	२०.००
५१. छः ढाला प्रवचन (भाग-१)	२०.००
५२. छः ढाला प्रवचन (भाग-२)	२०.००
५३. छः ढाला प्रवचन (भाग-३)	२०.००
५४. प्रवचनसुधा (भाग-६)	३०.००

વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ

ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩	આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૯૬, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮	અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯	બીજુ કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૦	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૧	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૨	ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪	દ્રવ્યષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૧૫	દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦

૧૭	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર.પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૫	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૮	ક્રમબદ્ધપર્યાય	-
૨૯	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૩૦	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૧	પરમાત્માપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૨	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત)	૧૧-૨૫
૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૮	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૯	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦

૪૦	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૧	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૯	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૩	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૪	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૫	પદ્મનંદીપંચવિંશતી	-
૫૬	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૦	રાજહૃદય (ભાગ૪) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૬૧	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૨	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૬૩	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૪	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૫	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦

૬૬	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૭	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૮	સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૯	તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૭૦	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૭૧	વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૨	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૩	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૪	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૫	વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૬	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૭	ધન્ય આરાધક	-
૭૮	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૪) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૭૯	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૫) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૮૦	છ ઢાળા પ્રવચન (ભાગ-૧)	૨૦-૦૦
૮૧	છ ઢાળા પ્રવચન (ભાગ-૨)	૨૦-૦૦
૮૨	છ ઢાળા પ્રવચન (ભાગ-૩)	૨૦-૦૦
૮૩	મુક્તિનો માર્ગ (સત્તા સ્વરૂપ ગ્રંથ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચન)	૨૦.૦૦
૮૪	રાજહૃદય (ભાગ-૫) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૫	રાજહૃદય (ભાગ-૬) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૬	રાજહૃદય (ભાગ-૭) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૭	રાજહૃદય (ભાગ-૮) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૮	રાજહૃદય (ભાગ-૯) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૯	રાજહૃદય (ભાગ-૧૦) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર	

	પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૯	રાજહૃદય (ભાગ-૧૧) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૮૯	રાજહૃદય (ભાગ-૧૨) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૦	રાજહૃદય (ભાગ-૧૩) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૧	રાજહૃદય (ભાગ-૧૪) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૨	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૬) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૨૦.૦૦
૯૨	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૭) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૨૦.૦૦
૯૩	અનુભવપ્રકાશના કિરણો (ભાગ-૧) ('શ્રીઅનુભવપ્રકાશ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૩	અનુભવપ્રકાશના કિરણો (ભાગ-૨) ('શ્રીઅનુભવપ્રકાશ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૪	રાજહૃદય (ભાગ-૧૫) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૫	રાજહૃદય (ભાગ-૧૬) ('શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૬	અનુભવપ્રકાશના કિરણો (ભાગ-૩) ('શ્રીઅનુભવપ્રકાશ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦
૯૭	અનુભવપ્રકાશના કિરણો (ભાગ-૪) ('શ્રીઅનુભવપ્રકાશ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦.૦૦

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर प्रवचन) (गुजराती)	१०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	७६००
२२	पुरुषार्थसिद्धिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४४००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२-३-४	५०००

३०	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३१	निर्भ्रांत दर्शननी केडीए (गुजराती)	५०००
३२	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७५००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	गुरुगुण संभारणा (हिन्दी)	७५००
३५	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३६	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३७	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३८	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३९	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
४०	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४१	प्रवचन नवनीत भाग-१-४ (गुजराती)	५८५०
४२	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	२३००
४३	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४४	पथ प्रकाश (हिन्दी)	५००
४५	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४६	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४७	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४८	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४९	भगवान आत्मा (गुजरात)	२०००
५०	भगवान आत्मा (हिन्दी)	१५००
५१	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
५२	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५३	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५४	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५५	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५६	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५७	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५८	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५९	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
६०	अमृत पत्र (हिन्दी)	२५००
६१	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
६२	परिभ्रमणकेप्रत्याख्यान (हिन्दी)	४०००

६३	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६४	आत्मयोग (हिन्दी)	३०००
६५	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६६	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६७	ज्ञानामृत (गुजराती)	३५००
६८	ज्ञानामृत (हिन्दी)	१५००
६९	वचनामृत रहस्य (गुजराती)	१०००
७०	वचनामृत रहस्य (हिन्दी)	१०००
७१	दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७२	कहान रत्न सरिता (भाग-१)	१०००
७३	कहान रत्न सरिता (भाग-२)	१०००
७४	कुटुम्ब प्रतिबंध (गुजराती)	१५००
७५	कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी)	२५००
७६	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (गुजराती)	१५००
७७	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी)	२०००
७८	गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७९	समयसार दोहन (गुजराती)	७५०
८०	समकितनुं बीज (गुजराती)	१०००
८१	स्वरूपभावना (गुजराती)	१०००
८२	स्वरूपभावना (हिन्दी)	१०००
८३	सुविधि दर्शन (गुजराती)	१०००
८४	सुविधिदर्शन (हिन्दी)	१९००
८५	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन	१२५०
८६	प्रवचन सुधा (भाग-१) (गुजराती)	१४००
८७	प्रवचन सुधा (भाग-२) (गुजराती)	७५०
८८	प्रवचन सुधा (भाग-३) (गुजराती)	१०००
८९	प्रवचन सुधा (भाग-४) (गुजराती)	१०००
९०	प्रवचन सुधा (भाग-५) (गुजराती)	१०००
९१	प्रवचन सुधा (भाग-६) (गुजराती)	१०००
९२	प्रवचन सुधा (भाग-७) (गुजराती)	७५०
९३	प्रवचन सुधा (भाग-८) (गुजराती)	७५०
९४	प्रवचन सुधा (भाग-९) (गुजराती)	७५०
९५	प्रवचन सुधा (भाग-१०) (गुजराती)	७५०

९६	प्रवचन सुधा (भाग-११) (गुजराती)	७५०
९७	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१ (गुजराती)	१०००
९८	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२ (गुजराती)	१०००
९९	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१) (गुजराती)	१०००
१००	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२) (गुजराती)	१०००
१०१	राज हृदय (भाग-१) (गुजराती)	१५००
१०२	राज हृदय (भाग-२) (गुजराती)	१५००
१०३	राज हृदय (भाग-३) (गुजराती)	७५०
१०४	अध्यात्मस्धा (भाग-१) (गुजराती)	१०००
१०५	अध्यात्मसुधा (भाग-२) (गुजराती)	१०००
१०६	अध्यात्म सुधा (भाग-३) (गुजराती)	१०००
१०७	अध्यात्म सुधा (भाग-४) (गुजराती)	७५०
१०८	अध्यात्म सुधा (भाग-५) (गुजराती)	७५०
१०९	गुरु गिरा गौरव (भाग-१) (गुजराती) (धारावाही प्रवचन)	१०००
११०	गुरु गिरा गौरव (भाग-२) (गुजराती) (धारावाही प्रवचन)	७५०
१११	मुक्तिनो मार्ग (गुजराती)	१०००
११२	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (हिन्दी)	१०००
११३	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (हिन्दी)	१०००
११४	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (हिन्दी)	१०००
११५	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (हिन्दी)	१०००
११६	धन्य आराधक (गुजराती)	७५०
११७	छः ढाला प्रवचन (गुजराती) (भाग-१)	१०००
११८	छः ढाला प्रवचन (गुजराती) (भाग-२)	१०००
११९	छः ढाला प्रवचन (गुजराती) (भाग-३)	१०००
१२०	जिन प्रतिमा जीन सारखी	५००
१२१	स्मरण संचिका	१५००
१२२	दंसण मूलो धम्मो	३५००
१२३	प्रवचन सुधा (भाग-१) (हिन्दी)	१०००
१२४	प्रवचन सुधा (भाग-२) (हिन्दी)	१०००
१२५	प्रवचन सुधा (भाग-३) (हिन्दी)	१०००
१२६	प्रवचन सुधा (भाग-४) (हिन्दी)	१०००
१२७	प्रवचन सुधा (भाग-५) (हिन्दी)	१०००
१२८	प्रवचन सुधा (भाग-६) (हिन्दी)	१०००

१२७	धन्य पुरुषार्थी (गुजराती)	१५००
१२८	धन्य पुरुषार्थी (हिन्दी)	६५००
१२९	छः ढाला प्रवचन (हिन्दी) (भाग-१)	१०००
१३०	राज हृदय (भाग-४) (गुजराती)	५००
१३१	राज हृदय (भाग-५) (गुजराती)	५००
१३२	राज हृदय (भाग-६) (गुजराती)	५००
१३३	राज हृदय (भाग-७) (गुजराती)	१५०
१३४	राज हृदय (भाग-८) (गुजराती)	१५०
१३५	राज हृदय (भाग-९) (गुजराती)	१५०
१३६	राज हृदय (भाग-१०) (गुजराती)	१५०
१३७	राज हृदय (भाग-११) (गुजराती)	१००
१३८	राज हृदय (भाग-१२) (गुजराती)	१००
१३९	राज हृदय (भाग-१३) (गुजराती)	१००
१४०	राज हृदय (भाग-१४) (गुजराती)	१००
१४१	राज हृदय (भाग-१५) (गुजराती)	१००
१४२	राज हृदय (भाग-१६) (गुजराती)	१००
१४३	अध्यात्म सुधा (भाग-६) (गुजराती)	१५०
१४४	अध्यात्म सुधा (भाग-७) (गुजराती)	१५०
१४५	अनुभवप्रकाशना किरणों (भाग-२) (गुजराती)	१५०
१४६	अनुभवप्रकाशना किरणों (भाग-३) (गुजराती)	१५०
१४७	अनुभवप्रकाशना किरणों (भाग-४) (गुजराती)	१५०

पाठकों की नोंध के लिये